वाणी–वीणा

कवयिता — श्री गणेश मुनि, शास्त्री
साहित्यरत्न

अमर जैन साहित्य-सदन, जोधपुर

पुस्तक :
वाणी-वीणा

कवयिता
श्री गणेश मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

सम्पादक ·
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रेरक .
जिनेन्द्र मुनि

प्राप्तिस्थल .
लक्ष्मी पुस्तक भण्डार
गाँधी मार्ग, अहमदाबाद–१

प्रकाशक .
अमर जैन साहित्य-सदन, जोधपुर

प्रथम प्रवेश .
दिसम्बर १९६८

मूल्य .
तीन रुपये पचास पैसे

मुद्रक ·
प्रेम प्रिंटिंग प्रेस, आगरा

किसको ?

समर्पण

वाणी-वीणा अर्पित करता,
गुरु-भ्राता के श्री चरणों में।
जिन के मधुर-स्नेह से प्रेरित,
लिख पाया इन अवतरणों में॥

ग
णे
श मुनि

अर्थ सहयोग

निम्न महानुभावो की ओर
से प्रस्तुत पुस्तक-प्रकाशन मे
अर्थ सहयोग सप्राप्त हुआ है,
अत उन उदार और दानी
महानुभावो का प्रकाशन-
समिति हृदय से अभिनन्दन
करती है।

२५०) शाह पुखराज जी रीखवाजी, साकरिया,
सांडेराव [मारवाड]

२५०) शाह हिम्मतलाल प्रेमचन्द जी, साकरिया,
सांडेराव [मारवाड]

२५०) शाह पारसमल उमेदमल जी, साकरिया,
सांडेराव [मारवाड़]

२५०) शाह मागीलाल जी केसुलाल जी, पोरवाड़,
नाथद्वारा [मेवाड़ .

२५०) श्रीमती सुन्दरबाई केशरचन्द जी, पारख,
पूणा डालमिल, पूना- ६





मेरी दृष्टि में

तत्त्वचिंतन के क्षेत्र मे हमारे बहुत से आचार्यों ने अपने जीवन के मौलिक चिंतन को वाणी देकर विश्वपथ को प्रकाशित एव प्रशस्त करने का प्रयत्न किया है। जैनाचार्यों से लेकर जैनेतर आचार्यों ने समान रूप से अपने चिंतनमणियो के धवल प्रकाश से विश्वमच को आलोकित किया है। वस्तुत. प्रवचन जिसमे 'चाहिए' सम्मत निर्देश हुआ करता है, उतना प्रभावकारी सिद्ध नही होता, जितना कि शास्त्रविहित विवेक जीवन की अनुभूति में रमकर वाणी मे व्यक्त हो, जनमानस मे प्रवेश पा, अपना अक्षुण्ण प्रभाव अकित करता है। 'वाणी वीणा' पुस्तक श्री गणेश मुनि के चिंतन, मनन व अनुभूति की काव्यमयी सरस अभिव्यक्ति का सम्यक् सकलन है। इसमे इतना बता देना मैं आवश्यक समझता हूँ कि इसमे अनुभूति की अभिव्यक्ति इतने सामान्य धरातल पर नित्य व्यवहार मे आने वाली उपमाओ, जीवन मे प्राय. घटित होने वाली घटनाओ एव जीवन की जीवत समस्याओ का सहारा लेकर हुई है। इससे कवि की वाणी कवि की मात्र वाणी न रहकर, जन सामान्य का समाधान बन गई है।

यह सही है कि जब तक व्यक्ति मन की आँखें खोलकर जीवन-जगत का दर्शन न करता, जीवन से दूर ही बना रहता है। इसलिए इस पुस्तक के रचयिता ने आत्म-बोध, आत्म-चिंतन, आत्म-निरीक्षण, आत्मानुभूति एव आत्मनिष्ठा पर विशेष प्रकाश दिया है। और इस क्रम मे धार्मिक, नैतिक,

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रो में अपनी काव्य किरणें विकीर्ण की गई हैं। इसमे धर्म का कोरा पडिताऊ उपदेश न दिया गया है, प्रत्युत् जीवन के प्रत्येक पहलुओ पर विहगम दृक्पात् करके प्रकृति की अशाश्वतता को लक्षित कर निवृत्ति की ओर आन्तरिक रुझान एव उन्नयन को इंगित किया गया है। प्रत्येक वर्ग को अपने कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा वरतते हुए परोपकार, सत्य, अहिंसा, स्नेह का सम्यग् आधान, दुर्गुणो से मुक्ति एव सद्गुणो की ओर प्रवृत्ति ही धर्म के अपने अचल है।

वाणी-वीणा किसी सम्प्रदाय विशेष का स्वर नही, वल्कि सच्चीनिष्ठा के साथ मानवीय कर्त्तव्य कर्मो का स्वर सधान है, जोवन जगत के श्रेयस् की पकड़ है।

असहायो की सेवा मानव का महान् धर्म है, जिस ओर कवि की दृष्टि विशेष रूप से गई है—

"दीन-दुखी पर करुणा करना,
आत्म तुल्य अनुभव करना।
सकल जगत को भ्रातस्नेह का,
अमृत रस अर्पण करना।"

कही कहीं तो कवि का स्वर इतना प्रखर हो पड़ा है, कि वह क्रान्ति का वाना पकड़े विना नही थम सका—

"भाषण मे, संभाषण में तो,
राष्ट्रवाद का नारा है।
पैसे का जब हुआ प्रश्न तो,
स्वार्थवाद ही प्यारा है।"

मानव को मानवता की सच्ची पहचान कराना ही, उसमे सच्ची निष्ठा जाग्रत करना ही धर्म के अचल का अपना स्वर

है। सम्पूर्ण पुस्तक को 'धर्म के अचल मे', 'अ गडाई', 'श्रेय और प्रेय', 'व्यक्ति और समाज', 'बोध निर्झर', 'युग अनुबधन' और 'पंथ के दीप' इन सात सोपानो मे विभाजित करके सयोजित क्रम से प्रस्तुत किया गया है। ये सोपान अपने विषय मे आप परिचय देते देखे जा रहे है। कवि की तलस्पर्शिनी भावनाएं जन सामान्य के बीच आहृत होगी, बुद्धिजीवी वर्ग भी वहुत कुछ प्राप्त कर सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

इसके कलापूर्ण सपादन मे श्री 'सरस' जी की कलम का चमत्कार भर जाने से पुस्तक की आत्मा निखर उठी है।

—डा० पारसनाथ द्विवेदी
सस्कृत-विभाग,
आगरा कालेज, आगरा।

कैसे झंकृत हुए, हृदय में, वाणी वीणा के ये स्वर !

सन् १९६७ का वर्षावास श्रद्धेय गुरुवर्य श्री पुष्कर मुनि जी म० के सान्निध्य मे वम्बई वालकेश्वर था। उस समय मेरा स्वास्थ्य काफी अस्वस्थ दशा मे चल रहा था। राजस्थान से वम्बई की ओर जब हम विहार करते हुए आ रहे थे, तो मार्ग के एक ग्राम मे इन्जेक्शन की सुई की सामान्य भूल ने मेरे हाथ पर एक फोडा का रूप बना दिया। जिसका आपरेशन नडियाद (गुजरात) मे स्थानीय जैन डा० शाह ने किया। एक सप्ताह के पश्चात् डाक्टर की सलाह से कुछ अपरिपक्व जखम की स्थिति को लिए ही हम वड़ोदरा की ओर आगे वढ गये। होनहार प्रवल थी। वडोदरा पहुँचे तव तक उस जखम के जरिये या अन्य कारण से वगल मे एक नूतन ग्रन्थी का उद्भव हो गया। मार्ग मे विशेप रुकने की स्थिति मे हम थे नही। कारण श्रद्धेय गुरुवर्य हमारे से तव तक काफी आगे वढ चुके थे। उस समय पण्डित श्री हीरा मुनि जी म० व लघुमुनि जिनेन्द्र जी प्रभृति हम तीन ही सत थे। येनकेन प्रकारेण द्रुतगति से लम्वे-लम्वे विहार करते हुए वम्वई के निकट पालघर तक गुरुदेव की सेवा मे पहुँचे। पालघर में वैरागी नवोनकुमार (पुनीत मुनि) की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। उसके पश्चात् वम्बई वालकेश्वर यथासमय वर्षावासार्थ हम लोग पहुँच गये।

इधर तव नक मेरे हाथ का जखम व वगल की ग्रन्थी सामान्य उपचार के सहारे कुछ-कुछ पीडित करती हुई चल ही

रही थी। सादडी निवासी गुरुभक्त डाक्टर खूबीलाल जो पुनमिया, डेढमास तक दिलचस्पी से मर्हमपट्टी करते रहे। हाथ का जखम ठीक हो गया, किन्तु वगल की ग्रन्थी अनेको उपचार के वावजूद भी ठीक नही हुई, दिन प्रतिदिन उग्र रूप धारण करती ही गई। अन्ततोगत्वा भरे भाद्रमास मे आपरेशन की स्थिति हमारे सन्मुख खडी हुई। उस समय कादावाडी के उपाश्रय मे परमस्नेही सतहृदय श्री विजय मुनि जी, शास्त्री व प्रभाकर श्री समदर्शी जी म० ठा० २ का वर्षावास था। उन की ओर से हमे यह सदेश मिला "यदि मुनि श्री कादावाडी के स्थानीय अस्पताल मे आपरेशन करवाना चाहे तो हम उन्हे सहर्ष सेवा देने के लिए तैयार है। श्री विजय मुनि, शास्त्री के प्रेम भरे आग्रह को सलक्षित कर वालकेश्वर का श्री सघ व गुरुदेव ने कांदावाडी के अस्पताल मे ही आपरेशन करवानें का निश्चय किया। भाद्रकृष्णा अष्टमी को हम अपने ज्येष्ठ गुरु भ्राता श्री देवेन्द्र मुनि जी के साथ व जिनेन्द्र मुनि को साथ लेकर कादावाडी पहुँचे। प्रथम दिन मैं अस्पताल मे भर्ती हुआ और दूसरे दिन सर्जन डाक्टर नरेन्द्र पारीख ने मेरा आप रेशन किया। आपरेशन जिसे हम सामान्य समझ रहे थे, किंतु वह काफी वडा निकला। एक मास तक अस्पताल व कादावाडी के उपाश्रय मे ही ठहरने का डाक्टर की ओर से निर्णय हुआ। सुलेखक श्री समदर्शी जी म० मुनि मर्यादा के अनुकूल पथ्यादि की व्यवस्था करते हुए मेरी सेवा मे जुट गये। उस समय की उनकी वह सेवा मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेगी। जहाँ मुझे सिर्फ चार पाच दिन ही ठहरने की कल्पना थी, वहां एक मास तक रुकने का निर्णय सुनकर मेरा मस्तिष्क ठनक गया। बिना अवलम्वन के समय कैसे पास किया जा सकता ? भला शय्या

पर पड़े-पड़े भी किसको सुहाता ? अध्ययनशील वृत्ति का आदी मन का पछी छटपटाने लगा। पर उस समय पढना-लिखना भी तो मेरे लिए शक्य नही था। बैठने की मनाई थी, और फिर दर्दियो की करुण-कराह से भरा वहाँ का वातावरण ! मैं विकल हो उठा। तथापि मन का पछी अवलम्बन की खोज मे था ही। मन ने भीतर ही भीतर गुनगुनाना प्रारम्भ कर दिया। उस समय मेरे कवि मन को सर्वप्रथम यह पद स्मरण हो आया—

> **वियोगी होगा पहला कवि,**
> **आह से उपजा होगा गान।**
> **उमड़ कर आँखों से चुपचाप,**
> **वही होगी कविता अनजान।**

जीवन और जगत् के विविध रगी पहलुओ पर मन चितन करने लगा। कभी कभी उस चिन्तन को साकार रूप देने के लिए वह फडफडा भी उठता था। पर उस चिन्तन को साकार रूप देना एक विकट समस्या थी। क्योकि उसी हाथ की बगल मे आपरेशन हुआ था जिस हाथ से मैं लिखा करता हूँ। अन्तर की सूझ ने आवाज दी, तव एक दिन मेरे सहयोगी श्री जिनेन्द्र मुनि से मैंने कहा—मैं जब भी तुम्हे सकेत करूँ, तब तुम कागज-पैंसिल लेकर मेरे पास आ जाया करो ! मैं जो बोलू उसे तुम लिख लिया करो। तव से मेरा सकेत पाते ही वह कागज पैंसिल लेकर उपस्थित हो जाता और मैं जो बोलता, वह उसे अङ्कित कर लेता। यदा कदा जो भी समय मिलता उसमे यह क्रम जारी रहता था। इस क्रम से मेरे मन की वेदना कम होने लगी, साथ ही तन की भी।

यह क्रम अस्पताल तक ही सीमित नही रहा, कादावाडा के उपाश्रय मे भी जव तक ठहरना हुआ तव तक भी और वहां से वालकेश्वर चले जाने के बाद भी चालू ही रहा। प्रवचन करने की स्थिति मे तो मैं था नही। फिर जो अवकाश ही तो ठहरा! 'स्वान्त सुखाय' की भावना से अभिप्रेरित होकर उस समय मैंने लगभग छह सौ पदो का निर्माण किया होगा!

कुछ समय के पश्चात् उन सभी पदो को मैंने एक डायरी मे यथावत् सकलित किया। और उन्हे सम्पादन कला मर्मज्ञ श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना को दिखाये। सुराणा जी को मेरे पद वहुत पसन्द आये। उन्होने मेरे निर्देशानुसार उन पदो का सुन्दर रूप से सकलन-आकलन कर विभिन्न प्रकरणो मे विभाजित कर उन्हे मुद्रण के योग्य वना दिये। 'वाणी-वीणा' की यही कहानी है।

इस अवसर पर श्रद्धेय गुरुवर्य श्री पुष्कर मुनि जी म० का मैं वार-वार अनुस्मरण करता हूँ जिन की अनुकपा से मैंने साहित्य जगत मे प्रवेश पाया है, यह उन्ही का प्रसाद है। साथ ही सुप्रसिद्ध साहित्यकार आगरा कालेज के सस्कृत प्राध्यापक डा० श्री पारसनाथ द्विवेदी को भी मैं इसलिए विस्मृत नही कर सकता जिन्होने अपने मूल्यवान समय मे से अवकाश निकाल कर प्रस्तुत पुस्तक पर भूमिका लिखने का कष्ट किया है।

इस सदर्भ मे एक वात और कह देना चाहता हूँ कि मैंने अपनी कविताओं की भाषा सरल हिन्दी रखी है। जिस का मूल कारण है जन-मानस भाषा के जटिल शब्द जाल मे न उलझ कर कविता की आत्मा से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर सके।

उसके मर्म को सम्यक् प्रकार से जान सके। वर्तमान युग को कविताओं मे अधिकांश यह देखा जाता है कि कवि अपने पांडित्य प्रदर्शन की चाह में कविता के भाव व भाषाशैली को अत्यधिक क्लिष्ट व दुरुह बना देता है। परिणामत. साधारण जन-मानस कवि और काव्य जगत् के प्रति अनास्था का भाव अभिव्यक्त करने लगता है। यह मुझे कतई पसन्द नही, 'कविता अपनी भाषा की दुरुहता से जन-मानस से अलग-सी छिटक जाय।' कविता लोह्-चुम्बक की भाँति जन-मानस को अपनी ओर बराबर आकर्षित करने वाली हो। पर, यह स्मरण रहे उस मे आत्म-ख्याति जैसी कोई तड़फ भी न हो। क्योकि आत्म ख्याति की तड़फ या भावना काव्य जगत को दूषित बना देती है।

उक्त तथ्य को लक्ष्य मे रखते हुए 'स्वान्त. सुखाय' के साथ मैंने अपने भावो को सरल हिन्दी मे ही रखने का यत्न किया है। सरल भाव व भाषा शैली मे लिखी गई प्रस्तुत सग्रह की कविता सामान्य जन-मानस के साथ विद्वद्जन-मानस को भी प्रिय लगेगी, ऐसी अपेक्षा है।

जैन स्थानक, घोडनदी
अक्टूबर १६६८
विजय पर्व

—गणेश मुनि



गणेश मुनि, शास्त्री

⊙

वाणी-वीणा

⊙

अनुक्रम



धर्म के अंचल में

वाणी–वीणा !

लोक - अभ्युदय, नि:श्रेयस् हित,
वाणी - वीणा हो अब झंकृत !
मैत्री - सहअस्तित्त्व - स्नेह के,
मधुर - मधुर मंगल स्वर मुखरित !!

प्रार्थना !

भक्ति-भाव के दीप सजोए,
द्वार खड़ा प्रभुवर! तेरे।
दीन - हीन - असहाय - विवश हूँ,
भव - बन्धन काटो मेरे॥
मंगलमय! दर्शन देकर के,
मन की प्यास बुझा देना।
भव - सागर में डगमगती,
नैया को पार लगा देना॥

नैया पार लगादो !

कौशिक 'अर्जुन' 'गोशालक' से
पापी तुमने तार दिए।
और 'चन्दना'-सी दुखियारी के
सकट तुम ने टार दिए।।
मेरी भक्ति के उत्तर में
अब तक मौन रहे प्रभु क्यो ?
पार लगादो नैया मेरी
डगमग डोल रही है जो।।

जय पार्श्वनाथ !

तुम धर्मक्रान्ति के अग्रदूत !
जीवन था उज्ज्वल तपःपूत !
था किया नाग का समुद्धार !
मिट गया जगत का अधकार !!
उपसर्ग सहे कमठासुर के !
हिम-गिरि-सा ध्रुव धीरज धर के !
मानवता के तुम नव प्रभात !
जय पार्श्वनाथ ! जय पार्श्वनाथ !

महावीर वन्दना !

नमस्कार ! जग जीवनदाता
अभय - मैत्री - करुणा सागर !
त्याग - तितिक्षा - तपोव्रती हे !
क्षमा - सरलता के आगर !!
था हृदय तुम्हारा दयापूत !
वाणी मे सत्यामृत सरसा !
भव - ताप मिटाने धरती का ,
उपदेश-सुधा रस था बरसा !

समदर्शी महावीर !

हानि - लाभ, अपमान - मान ,
स्तुति-निन्दा, सुख-दु ख मे समता ।
विष से भी अमृत - कण लेकर ।
आत्म - भाव मे नित रमता ।।
समदर्शी, समताऽमृतवर्षी ,
मन-वचन-नयन समतामय थे ।
तुम ने सब जग को दिया अभय ,
इसलिए स्वयं अकुतोभय थे ।।

पवित्र जीवन हो !

मन मेरा निर्भय, निस्पृह हो ,
अरु जिन मे हो भक्ति अपार ।
बन्धुजनो में मोह नही हो ,
शान्त सभी हो काम-विकार ॥
जन्म-मरण-पापों से भय हो ,
हो निर्वैर, सदा निष्काम ।
सग-मुक्त-मन, मधुर सभी से ,
ऐसा जीवन हो अभिराम !

भावना !

करुणामय स्नेह-सुधा का रस ,
छलके निश्छल-निर्मल मन में ।
वाणी से अमृत - रस बरसे
हो स्वप्न सफल जग-जीवन मे ॥
शान्त, दान्त, एकाकी, निस्पृह
जग की विषय-वासना भूल !
आत्म-भाव मे रमण करूं मैं
कर निज कर्मो को निर्मूल !

मनोकामना !

है चाह नही मुझ को नरेन्द्र-
सुरेन्द्र पद की कामना।
कीर्ति - वैभव और सत्ता की
है नही कुछ भावना!
भावना बस एक है
पद जो कि मानव का मिला।
स्नेह - सेवा - सद्गुणों के
सुमन इस मे दूँ खिला ॥

समभाव हो !

अहि मे अथवा सुमन - हार में
हो सुहृद या रिपु बलवान।
मणि में, अथवा मृत्कण में भी
कुसुम - सेज हो, या चट्टान ॥
तृण मे अथवा तरुणी - गण मे
कर के मैं समदृष्टि पुनीत !
'सोऽहं सोऽह' की ध्वनि करते
करूँ सदा मैं दिवस व्यतीत !

धर्म ही सखा है !

इस धरती पर सच्चा साथी
आत्म - सखा, कल्याण - सखा ।
सदा शरणदाता मानव का
धर्म एक जाना - परखा ।।

धर्म बीज !

शुद्ध - सरल - मानस में ही तो
पावन धर्म विराजित है।
कोमल - शीतल - मृदुल भूमि मे
होता वीज सुविकसित है ।।

धर्म द्वीप !

जरा - जवानी, जन्म-मृत्यु का
चलता रहता महाप्रवाह।
डूब रहे हैं प्राणी इस में
विपयो का है नीर अथाह।
धर्म द्वीप है, जग-जीवो की
रक्षा का है यह आधार।
सत्य - अहिसा की लहरों से
सरस शान्ति का है सँचार ।।

हो जाना बलिदान !

स्वजन-धन-प्राणो का तज मोह
धर्म पर हो जाना बलिदान !
नही हिलना निज निश्चय से,
भले ही आए जो तूफान !!
'सुदर्शन' का कर शुभ दर्शन
रहा शूली पर मुस्काता !
देह की चमडी सब उधड़ी,
मगर था 'स्कन्दक' मुस्काता !!

प्रभुभक्ति !

साथी ! इस जगती पर केवल
सच्ची वही कमाई है।
प्रभु-भक्ति युक्ति-युत जिसने
यथाशक्ति सरसाई है ॥

ईशभजन !

ईशभजन ही श्रेष्ठ भजन है,
करो सदा इसका रस पान !
धीरे धीरे बन जाओगे
स्वयं एक दिन तुम भगवान् ॥

प्रभु भक्ति की सुरसरिता !

प्रभु भक्ति की सुरसरिता मे
करते रहो सदा अवगाहन !
त्रिविध ताप मिट जाएँगे द्रुत
और बनेंगे तन, मन, पावन !

प्रभु दर्शन की प्यास...

विकल हूँ तेरी संस्मृति मे
देव ! अब दर्श दिखा देना ।
पिपासा जन्म—जन्म की जो
लगी मन में, बुझा देना ।।

भगवान कहाँ ?

क्या खोजे मन्दिर मे जाकर
प्रतिमा में भगवान कहाँ ?
वह तो तेरे अन्तर मे हैं
तू खोज, अरे इन्सान ! वहाँ ।।

भक्ति योग !

भक्ति योग एक श्रेष्ठ योग है
सहज सुखद है, पथ शुभतर !
जीव और ईश्वर का होता
इस पथ से ही मिलन मधुर !

भक्त !

भक्ति में अनुरक्ति हो तो,
शक्ति उसकी है अमित !
स्वर्ग क्या, अपवर्ग मिलता
भक्त प्रभु से भी अजित !

पूजा...

फल फूलों से थाल सजाकर,
मन्दिर मे नित जाता है।
घी के दीप जला, मेवो से
प्रभु को भोग लगाता है।
पर, देखा क्या आँख खोलकर
प्रभु नित द्वारे आते है।
दीन-दुखी का रूप बना
आवाज लगाकर जाते है।

सद्गुरु !

भवसागर के मध्य भवर में
फंसकर के जब चक्कर खाया !
सद्गुरु नाविक ने तब आकर
बेड़ा मेरा पार लगाया !

मन की गहराई...

मन की गहराई में उतरे,
जलती है वह चिन्मय ज्योति !
ज्यों सागर की गहराई मे
मिलते हैं बहुमोले मोती !,

अन्तर्वीक्षण !

तू कौन, कहाँ से आया है ?
ओ आगे कहाँ पर जाना है ?
अन्तर्वीक्षण करके तुझ को
इसका भी पता लगाना है !!

निज रूप !

नर का बहुमोला यह चोला
दिन—दिन भोगो में गाला है।
दिग्भ्रान्त भटकता रहा सतत
निज-रूप नही सभाला है ॥

जिनरूप !

जिनस्वरूप जो पाना चाहता,
निजस्वरूप तू ले पहचान
'जिन' में ही निज—रूप छिपा है
रे मन ! इतना करले ज्ञान !

आत्म विजेता !

जिस ने राग-द्वेष को जीता
आत्मविजेता वही महान् ।
विषयोन्मुख इन्द्रिय दल जिसने
किया विजित है, वह बलवान !!

आत्म चिन्तन !

आत्म—चिन्तन मार्ग है
निज आत्म—दर्शन का सही ।
आत्मज्योति प्रगट होती
आवरण रहते नही ॥

दीन कपोत...

जब तक नही जाग्रत कर पावे
अमित आत्म—गुण का उद्योत !
अंधकार में भटको तब तक
बने भिखारी, दीन-कपोत !!

अमृत—बेली

यह दिव्य अहिंसा की बेली
अमृतफल देने वाली है।
जीवन में स्नेह—मधुरता का
नवजीवन भरने वाली है।

मुनि दर्शन !

पूर्वभवों के पुण्योदय से
मुनिदर्शन हो पाते हैं ।
मुनि की पावन संगति मे आ
भवसागर तर जाते है ।

सन्त दर्शन !

याचित भोजन करते हैं जो,
कर ही जिनका पात्र पुनीत ।
दशो दिशाएं अम्बर हैं बस,
शय्या है पृथ्वीतल स्फीत !
निस्पृह और असंग हृदय हैं
है निज आत्मा मे सतुष्ट ।
उन सन्तो के पावन—दर्शन
से होते है कलिमल नष्ट ।

अन्तर दर्शन !

बाहर बाहर सभी देखते,
नहिं देखे अन्तर में कोय ।
अन्तर मे जो गहरा देखे,
(तो) दूर प्रभु से अन्तर होय ।

चैतन्यदेव !

मैं अमितशक्ति का सागर हूँ
सब ऋद्धि सिद्धि का स्वामी हूँ।
मैं धरा-गगन का अधियन्ता,
घट घट का अन्तर्यामी हूँ।
मैं क्षुद्र परिधियो से ऊपर
चैतन्यदेव हूँ ज्योतिर्मय !
मैं हूँ असीम महासागर से
मैं महाकाल से भी अक्षय !!

स्वात्म-रूप !

है अगर देखना स्वात्म रूप,
तो सद् विवेक का दीप जला।
अँधेरे मे निज को, पर को
चीन्हेगा कैसे बोल भला ?

आत्मदेव !

मिट्टी अरु पत्थर की प्रतिमा
तू ने पूजी है सौ सौ बार !
पर, आत्मदेव के दर्शन तो
मन ! कर न सका तू एक बार !!

अहिंसा का सम्बल !

भूखे को भोजन प्रिय होता
प्यासे को मधु शीतल जल !
रुग्ण चाहता औषधि जैसे
हमें अहिसा का सम्बल !

क्षमा नीर !

मैत्री के सुन्दर सुमनों को,
आज महकने दो उपवन मे।
जीवन—बगिया को सरसाने
क्षमा नीर बहने दो मन में।

वैर से वैर...

वैर से नही वैर मिटता
आग से नही आग बुझती !
धूप से प्रस्वेद सूखे
बात तो यह है न जचती !

अहिंसा का प्याला !

इस रम्य अहिसा के प्याले मे
भरा लबालब प्यार मधुर।
छोटे—बड़े सभी जीवो को
जीने का अधिकार अमर !

अहिंसा की शक्ति !

दिव्य अहिंसा की शक्ति के,
सम्मुख शस्त्र-शक्ति झुकती।
दैविक-बल के सम्मुख, प्रतिहत-
पशु-बल की शक्ति रुकती।
क्रूर हृदय की चट्टानों से,
करुणा का निर्झर बहता।
हिंस्र-हृदय भी कोमल बनता,
शत्रु, मित्र का पथ गहता॥

पार कैसे होगा ?

दीन दुःखी जन को दुख देकर,
कैसे होगा प्रभु से प्यार ?
टूटी नौका पर चढने से,
हो सकता क्या सागर पार ?

पशुहिंसक से !

काँटा चुभते ही चीख उठा,
थी क्षणिक वेदना वह तो भी।
तेरा खन्जर पशु गर्दन पर,
जब चला, तो क्या गुजरी होगी ?

रे हिंसक ! क्रूर मनुज ! इसका,
अनुमान जरा-सा कर लेना।
अपने दर्दों की तकडी पर,
तू दर्द और का धर लेना।।

सुख से सुख...

सुख देने से सुख मिलता है,
सुखसाता से सुखसाता है।
जो पेड़ आम का बोता है,
वह मधुर आम्र फल पाता है।।

अभयदान !

सब धर्मों में दान श्रेष्ठ है,
उसमे भी है अभयदान।
दुख—मकराकुल भवसागर को
तरने हित सुन्दर जलयान।।

स्नेहामृत !

दीन दुखी पर करुणा करना
आत्म—तुल्य अनुभव करना।
सकल जगत को भ्रातृ स्नेह का
अमृत-रस अर्पण करना।।

—ओरों को रुलाने वाला !

जो नर पाप कमाता वह,
सन्ताप-श्राप ही पाता है।
इन्सान रुलाता ओरो को,
वह आँसू स्वय बहाता है॥

सत्य कैसे मिले ?

सत्य न सघर्षो से मिलता,
सत्य साधना के द्वारा।
बहुत भाड मे फूक—फूककर,
किसने अब तक मारा पारा ?

सत्य-बात !

सत्य बात तो तुम्हे नीम-सी,
निश्चित कडवी लगती है।
मगर तथ्य यह पाप—ताप भी,
मन का तो वही हरती है॥

सत्य-सुमन !

चाहे जितने चक्र झूठ के
क्यो न चलाए जाते हो।
सत्य अन्त मे सत्य रहेगा,
मन को क्यो भरमाते हो ?

व्यर्थ कागजी फूलों से,
बन बालक मन बहलाते हो।
सत्य-सुमन की सौरभ पाने,
सत्य न क्यों अपनाते हो ?

ब्रह्मचर्य !

ब्रह्मचर्य है कठिन साधना,
दुष्कर करना मनोविजय।
पौरुष जगता, शौर्य चमकता,
होता निर्मल शान्त हृदय।
सभी व्रतो में श्रेष्ठ तपोव्रत,
शुचियों में शुचितर है सौम्य।
देवों द्वारा वन्दनीय वह,
ब्रह्मचर्य जो पाले रम्य॥

अपरिग्रह का अमृत

अपरिग्रह एक अमृत कण है,
सरस शान्ति सरसाता है।
तृष्णा की ज्वाला बुझ जाती,
मन को मधुर बनाता है॥

कर्मवाद !

यह कर्मवाद का गुरु सभी को,
पाठ एक सिखलाता है।
जैसी करनी वैसी भरनी,
यथाबीज फल पाता है ।।

स्याद्वाद !

स्याद्वाद समन्वय का पथ है,
है कला भाव अभिव्यंजन की।
सत्योन्मुख है सापेक्ष वचन,
शुभ रीति सत्य के दर्शन की ।।
सत्यांश ग्रहण करता है 'नय'
पूर्णांश-कथक है वाक्य, 'प्रमाण।'
निरपेक्ष वचन 'दुर्नय' होता'
सत्यान्वेषण सापेक्ष महान् ।।

सम्यग्दर्शन !

है सम्यग्दर्शन जीवन के
बोधि-बीज का रस-सिंचन !
शान्ति और सुख पादप क्रमश
पाते रहते अभिवर्द्धन !

जिनवाणी !

वर्षा की रिमझिम बूंदों से,
वसुधा का कण-कण खिल उठता !
जिनवाणी अमृत वर्षा से
त्यो भविजन-मन-वन खिल उठता ॥

श्रद्धा और तर्क...

तर्क जहां, वहां श्रद्धा नहिं है,
श्रद्धा है, वहा तर्क नही है।
सृष्टि का यह अटल सत्य है,
जहां निशा, वहां अर्क नही है।

ज्ञान नीर !

गगा के निर्मल जल मे तो
बाहर के ही मल धुल पाते।
पर ज्ञानी-जन ज्ञान-नीर से
अन्तर का कलिमल धो पाते !

ज्ञान-ज्योत्स्ना !

जहां ज्ञान की शुभ्र-ज्योत्स्ना
मन के भूतल पर छितराती।
वहां विकार-निशिचर-बालाएं
आने से प्रतिपल कतराती।

ज्ञान की बाती !

विना ज्ञान के सूना लगता
तेरा मन-मन्दिर साथी !
प्रभु के दर्शन करने हो तो,
जला ज्ञान की शुभ बाती !

त्रिवेणी...

यह त्रिवेणी ज्ञान, दर्शन-
विमल शुद्धाचार की।
धो रही अन्तर हृदय की
कालिमा ससार की ॥
स्नान कर इसमे भविक !
मन को पवित्र बनाइए।
घोर भवतृष्णा मिटाकर
शान्ति पाते जाइये ॥

मुक्ति न होगी ?

मुक्ति न होगी शास्त्र-श्रवण से,
नही पुस्तक से होगा ज्ञान।
अमृतघट शिर पर लेने से,
अमर न होते है मतिमान ॥

महामन्त्र !

यह महामन्त्र नवकार मन्त्र है,
इसमे चौदह पूरब का सार।
शुद्ध—शान्त—निर्मल मन से,
जपिए, होगा भव बेडा-पार।

महावीर का धर्मध्वज !

महावीर के धर्मध्वज को,
कभी न झुकने देगे हम।
धर्म—द्वेष पाखण्डवाद से,
लोहा अविरल लेगे हम ॥

महावीर के सन्देश...

सत्य वचन, संतोष-भाव युत,
परनिन्दा से रहना दूर।
मौन भाव मूर्खो के सग में,
यथाशक्ति देना भरपूर ॥
विनय बडो से, छोटों से
सद्भाव, दीन पर दया विशेष।
पीडित की परिचर्या करना
महावीर का यह सन्देश ॥

पुण्य-बीज !

हीरे—सा यह नर तन पाया,
व्यर्थ इसे नही खोना रे ।
धर्म साधना कर परभव हित,
पुण्य-बीज कुछ बोना रे ।

सुकृत खेती !

नर जीवन, सुकृत-खेती की
बोनी का है एक समय ।
अगर हाथ मे निकल गया तो,
सिर पीटोगे, कर अनुशय ।।

करुणा !

करुणा नर जीवन का रस है,
शृ गार सरस कहलाता है ।
हस्ती—भव—कृत करुणा से ही,
'मेघ' परम सुख पाता है ।।

धार्मिकता !

वैज्ञानिक युग मे धार्मिकता,
क्यो आज तिरस्कृत होती है ?
बस , इसीलिए कि भौतिकता,
जीवन में सत्कृत होती है ।।

धार्मिक सस्कार !

जीवन उसका सफल जगत् में,
जिसमें है धार्मिक सस्कार।
धार्मिकता से शून्य मनुज तो,
है केवल भूतल का भार॥

प्रेम मन्त्र !

प्रेममन्त्र है, मन्त्रराज,
है चमत्कार इसका सुविदित।
द्वेष—क्लेश मिट जाते सारे,
होते सभी सुरासुर नत॥

संयम की रस्सी !

जगती के लघु कण से लेकर,
खोजो चाहे तीनो लोक।
किन्तु मिलेगा कोई विरला,
तुमको ऐसा मनुज विशोक॥
जो इम विषय रुपिणी—करिणी,
के पीछे उन्मत्त अगाध।
अन्तःकरण रूप हाथी को,
सयम रस्सी से ले बाँध॥

मायाग्रन्थी...

मायाग्रन्थी का भेदन कर,
बन जाओ, सरल-मृदुल-अविकार।
'मोहन' को प्रिय मुरली सीधी,
सरलात्मा पाता सब का प्यार।

दान

देखा मैंने कुए से जल
सतत निकाला जाता है।
किन्तु निकाला, उससे ज्यादा,
पुन कूप मे आता है।
इसी तरह से शुभ कार्यो में,
धन-व्यय करते जो प्रतिदिन।
उनकी श्री, सुकृत—समृद्धि,
बढ़ती जाती है छिन छिन ॥

अलंकार

विनय धर्म का मूल, और
मानव जीवन का अलकार।
लोकप्रियता का मूलमत्र,
है मोक्ष नगर का सिहद्वार ॥

धन्य शालिभद्र !

मखमल के कोमल फर्शो पर,
पडते थे पैरों में छाले।
आज चले वे कंटक पथ पर,
धन्य शालिभद्र मतवाले !
भूषन—वसन—अशन के अक्षय-
कोष भरे रहते घर मे।
बने अकिंचन घोर तपस्वी,
त्याग दिये सब क्षण भर मे ॥

धन्य धर्मरुचि !

हे धर्मरुचि ! करुणार्द्रहृदय !
है धन्य तुम्हारा करुणाव्रत।
प्राणो की नही परवाह करी
औरों के प्राण बचाने हित ॥

गजसुकुमाल !

अंगार धधकते थे शिर पर
पीड़ा थी कितनी घोर—कराल।
सह गये उसे हँसते—हँसते
है धन्य मुनि वे गजसुकुमाल।

आत्मा में वास !

सखे ! धन्य है वे जन, जिन ने,
काट दिये तृष्णा के पाश ।
विषय—वासना तज कर मन की
करते निज आत्मा मे वास ।

मोह महिमा...

अनजाने ही दीप ज्योति पर,
देता प्राण शलभ नादान ।
पुनि वशी मे लगे मांस को,
खाकर फसती मीन अजान !
किन्तु जानकर भी विपदा मे,
पड़े हुए है ये नर मूढ !
नही छोडते है विषयों को,
अहो ! मोह की महिमा गूढ ।।

उस पार !

लोभ महासागर लहराता,
तृष्णा का यहाँ उठता ज्वार ।
महामच्छ फुंकार रहे है,
कैसे जाओगे तुम पार ?

लो, सन्तोष—शील की नौका,
और लगा सेवा की पतवार।
अनासक्त मांझी रे मनवा !
नाव लगाले अब उस पार ॥

वेश्या !

रुपेन्धन से ज्वलित काम की,
ज्वाला है वेश्या अपवित्र।
पर विषयांध मनुज करते है,
धन—यौवन का होम विचित्र ॥

मोह प्रभंजन !

वायु का झोका हलका—सा,
प्रज्ज्वलित दीप गुल कर देता।
(त्यो) दीप ज्ञान का ज्योतिर्मय,
गुल मोह प्रभजन कर देता ॥

यौवन की हाला...

कमल—नयन से फैंक रही है,
बाला मनसिज के विष-वाण।
योवन की हाला पी पागल,
घायल होते है अनजान।

दृष्टि-दंश !

सर्प-दंश के सफल चिकित्सक,
है प्राय सर्वत्र अनेक।
पर, मुग्धा के दृष्टि—दश के,
नही वैद्य, अरु औषधि एक।

काम-नाग !

काम—नाग—दशित नर कहता,
है रमणी के अधर मधुर।
जैसे अहि—दशित को लगता,
कटुक नीम भी बहुत मधुर।

भोगों की विषकली !

भोगो की इन विष कलियो पर-
मन मधुकर ! तू क्यो ललचाया ?
यह मधु, मधु नही, तृप्ति न होगी
है यह छलिये की छाया।

मन !

सतत कष्ट, सकट के दाता
तज मन ; विषयो को अविलम्ब।
दुख सब दूर हटेगे तेरे,
श्रेय मार्ग का कर अवलम्ब।

प्रज्ञा-वधू

सुज्ञ मनुज ! लो नारि—संग के
क्षणभगुर मुख से विश्राम ।
रमण करो तुम करुणा-
मैत्री, प्रज्ञा वधुओ से अविराम ।
नही नरक में रक्षक होगे,
घन-स्तन-मडल शोभित हार ।
और न क्वणित-मेखला-मडित,
उनके वे कटि—बिब अपार ।।

विषय त्याग !

भोग भोगते, दिव्य स्वर्ग के,
बीत गये हैं अगणित वर्ष ।
फिर भी देखो देवराज भी,
त्याग न सकते उन्हे सहर्ष ।।

कनक कामिनी...

कनक—कामिनी जीवन के,
दो बाधक तत्त्व कहाते है ।
है ऐसा दलदल कि जिसमे,
विरले ही बच पाते हैं ।।

तृष्णा !

केश सफेद हुये सब शिर के,
अरु मुख रेखाओ से व्याप्त !
अहो अंग सब शिथिल हुये,
पर, तृष्णा तरुणाई को प्राप्त !

मैत्री-दिवस !

मैत्रि-भाव की ज्योति जलाकर,
क्षमा आज सब को करना।
और भुला पर-अपराधो को,
निज अपराधों को स्मरना ।।

दीवाली !

जलती है प्रतिवर्ष हर्ष से,
झिलमिल दीपक की ज्योति !
नवप्रकाश की साडी पहने,
अमा-निशा जग तम खोती ।।
पर, मन-मन्दिर के अन्दर जो,
घनीभूत तम छाया है।
ज्ञान-दीप से उसे नष्ट-
करने का अवसर आया है ।।

सम्वत्सरीपर्व !

मधुर क्षमा का अमृत लेकर,
आया सम्वत्सरी का पर्व।
विमल ज्ञान की ज्योति जलालो,
अन्तर् तमस मिटादो सर्व ॥

मुर्दा-जीवन !

पानी नही है जिस मोती में,
वह मोती मिट्टी का कण है।
श्रद्धा नही है जिस जीवन मे,
वह जीवन मुर्दा-जीवन है ॥

कोल्हू का बैल !

जो चला साधना के पथ पर,
माया के बन्धन बिन तोड़े।
कोल्हू से वैल बधा है वह,
घेरे मे ही निशिदिन दौडे ॥

दृष्टि-मोह !

धन का मोह सहज है तजना,
देह मोह भी कठिन नही।
दृष्टि-मोह का बन्धन लेकिन,
तजना सबसे कठिन कही।

—*—


अंगड़ाई

अंगड़ाई !

बीती तमसिल निशा, पूर्व के,
तट पर छाई अरुणाई ।
जगा सृष्टि का अलसित कण-कण,
भरकर अभिनव अंगड़ाई ॥

जागो !

जगा रही मदिर की झालर,
हुआ सबेरा अब जागो !
कर्मक्षेत्र जीवन का सन्मुख,
वढो ! मोह, मद को त्यागो !

जागृति कितनी ?

सौ वर्षों तक घृत मे रहकर,
दर्वी हुई नही चिकनी ।
जीवन भर उपदेश सुना, पर
जागृति आई है कितनी ?

तकरार न कर !

धन, वैभव, यौवन सपना है,
सपनों से तू प्यार न कर ।
है धूप—छांह, बढ़ती—घटती,
तकदीर से तू तकरार न कर !

संध्या की लाली !

धन यौवन की सुषमा अस्थिर,
जैसे स्वर्णिम सध्या लाली ।
इतराता क्यो ? इठलाता क्यो ?
क्षण मे खाली होगी प्याली ।

तब तक करलो !

अरे , स्वस्थ है जब तक तन यह,
और जरा है जब तक दूर ।
जब तक शेष आयु की डोरी,
है इन्द्रिय मे बल भरपूर ।
आत्म-श्रेय के हेतु तभी तक,
करले यत्न, अरे मतिमान !
आग लगे, तब कुआँ खोदने
से क्या लाभ, बता अनजान ।

अविनाशी क्या है ?

जन्म लिया है जिसने, उसको,
मृत्यु बनाती है निज ग्रास ।
कहो, कौन सी वस्तु जगत में,
जिसका कभी न होता ह्रास ?

मनमोजी !

चाहे जितनी करले तू,
रे मनमोजी ! यहां मनमानी ।
पुण्य-पाप का होगा निर्णय,
याद आयेगी तब नानी ॥

फिर भी प्यासा ?

चाहे घनघोर घटा बरसो,
पर, चातक तो प्यासा फिर भी,
चाहे जितना खाओ-पीओ,
पर, मन तो यह प्यासा फिर भी ।।

आशा नदी !

आशा नदी, मनोरथ जल है,
जिस मे तृष्णा-रूप तरंग ।
विषय-वितर्क-मकर है इस मे
करते धैर्य द्रुमो को भंग ।
मोह-भंवरमय, दुस्तर गहरी
चिन्ता रूपी जिस के तीर ।
उसके पार पहुंच कर होते
परम सुखी योगी जन धीर ।

मोहमदिरा !

दुनियां की इन रंगरंगीली
गलियों मे कई ठगागए !
मोह-मदिरा पी पागल बनकर,
पूंजी अपनी लुटा गए !

मोह का छेद !

फूटा है वर्तन का पदा,
कैसे ठहरेगा पानी ?
तेरे मन में छेद मोह के,
व्यर्थ जारही गुरु-वाणी !

प्यार की लहरें !

प्यार की लहरो के आवर्त,
मचल कर उठते हैं हरवार।
सभल कर खेना अय नाविक !
अभी तो बेड़ा है मंझधार ॥

मोत शीप पर घूमे !

है चार दिनो का चंचल जीवन,
मोह-मदिरा पी कर झूमे।
होश मे आजा अय पगले ! तू,
मोत शीप पर है घूमे ॥

मेरी–तेरी !

मेरी—तेरी, तेरी—मेरी,
की अँधेरी मे भटका।
कचन काया होगी ढ़ेरी,
सांस आश बिच मे अटका ॥

भोगों की खाई !

अली कली मे, मीन जाल मे,
गज कीचड़ में फँस जाता।
भोगो की गहरी खाई में,
फसकर मानव दुःख पाता ॥

भय !

भोगो मे रोगो का भय है,
मृत्यु–भय है जीवन मे।
धन के साथ लगा तस्कर–भय
और जरा–भय यौवन मे ॥
बल, रिपु-भय से भीत, और
दुर्भाग्य-भीत है यह सौभाग्य।
सभी वस्तुएँ भय युत जग मे
अभय एक केवल वैराग्य !

माया किसकी ?

किसकी हुई, रही नित किस पै
यह चचल अस्थिर माया !
आज यहाँ पर, वहाँ गई कल
चलती-ढलती-सी छाया !

सदा न होगी ?

सदा न गुलशन बाग रहेगा
सदा न होगी यह फुलवारी !
आयेगी जब एक हवा तो
उजड़ जायेगी केसर-क्यारी !!

रैनबसेरा !

'घर' कह ममता करता जिससे,
वह तो रैनबसेरा है।
पंछी की भाँति उड़ जाना
यहाँ से हुए सवेरा है।

पानी की बर्फ !

रूप जवानी बाढ़ नदी की
क्षण भर मे ढल जाएगी।
यह पानी की बर्फ सलौनी,
हवा लगे गल जाएगी !।

समय का फेर।

समय समय का फेर जगत मे
समय समय की छाया है।
राजा हरिचन्द भगी के घर
काशी बीच बिकाया है।

हाथ पसार !

अब तक किसके साथ गया है
तख्त—ताज़, वैभव भण्डार।
आई मौत विलपता चक्री
गया अकेला हाथ पसार ।।

तीन दशा !

भाग्यवान ! इतरा मत इतना
नही समय रहता इक-सा।
देख सूर्य से तेजस्वी की
होती दिन मे तीन दशा ।।

तन की सार्थकता !

अन्धो की तू बनजा लाठी
और निराशजनो की आस।
अन्धकार में भूले भटके-
जन का बन जा दिव्यप्रकाश ।।
तेरे इस तन की सार्थकता,
पर-सेवा पर-हित मे है।
सेवा-रत मृणमय तन की
हीरे से ज्यादा कीमत है ।।

आखिर गये !

आये रावण, दुर्योधन से
शाह सिकन्दर दारा से।
रोते और बिलखते आखिर
विदा हुए जग कारा से॥

यौवन !

सदा न खिलेगे फूल खुशी के,
सदा न बहेगी रसधारा।
सदा रहेगा नही एक-सा,
यह मधुमय-यौवन प्यारा!

क्यो इतरा रहा है ?

गगनचुम्बी महल पर तू,
आज क्यो इतरा रहा है?
कल न होगी ईंट यहाँ पर,
यह भी भूला जा रहा है॥

क्यों सोता है ?

अभी दूर है मजिल तेरी,
राही! क्यो तू सोता है?
जगने वाला पाता है कुछ,
सोने वाला खोता है॥

शीर्षक-हीन कहानी !

जीवन क्या है उलझी गुत्थी,
शीर्षक-हीन कहानी है।
क्षण भर में ढल जाने वाला
तेज बाढ का पानी है ॥

सुख कहाँ !

कहो, ओस के दो जल-कण से
मन की प्यास बुझे कैसे ?
मिट्टी के सुन्दर वन—फल से
क्षुधा अनन्त मिटे कैसे ?
सुख के कल्पित-केन्द्र विषय सुख,
होती नही तृप्ति इन से।
सुख की अनुभूति अन्दर में,
समाधान है करने से ॥

लाभ कमाना !

पूर्व जन्म से सुकृत लाए,
यहाँ से खाली हाथ न जाना।
है व्यापार मनुज जीवन यह,
सावधान ! कुछ लाभ कमाना !

खुद मिट जाता है !

ओरो को मिटाना चाहे जो ,
हस्ती उसकी मिट जाती है !
ओरो को जलाने से पहले,
माचिस खुद ही जल जाती है !!

साहस की कैंची !

विघ्नो का यह जाल सामने
कैंची लेकर साहस की !
इसे काट कर आगे बढ !
धागो से बुन जाली यश को !

आंखमिचौनी !

पल—पल में यहां मधुर—मिलन
पल—पल मे यहा बिछुडना है।
जग आँखमिचौनी की क्रीडा
खिलना है और सिकुडना है।

संक्लेश क्यों ?

कटने पर भी, तरु बढ़ता है ,
क्षय होने पर भी राकेश !
फिर क्यो असफलता पर होता
तेरे मन मे यह सक्लेश ?

पहले सोच लो !

मत कर डालो सहसा, साथी,
भला बुरा कोई भी काम।
शान्तहृदय हो, पहले से ही,
उचित सोच लेना परिणाम।
क्योंकि शीघ्र-कृत, कर्मों का भी,
फल है फिर जीवन पर्यन्त।
उर मे चुभे हुए कंटक सम,
देता है पीडा अत्यन्त॥

फूलों से बचना !

ऊबड_खाबड जीवन का पथ
(तू) संभल-संभल चलना साथी!
तीखे काटो से ही क्या,
फूलों से भी बचना साथी!!
जीवन मे ममता-माया के,
ये फूल अधिक भयकारी हैं।
फँस जाता इन मे जो भौंरा,
लुट जाती उसकी क्यारी है॥

सही मूल्यांकन !

आशाओ की नव—नव कलियाँ
खिलती ओ मुरझाती है।
हर्ष-शोक करने से भाई !
शान्ति नही मिल पाती है।।
जैसी स्थिति हो तदनुरूप ही
जीवन जीना है श्रेयस्कर।
स्थिति का हीन-अधिक मूल्यांकन
केवल होता ही है दु खकर !!

मानव तन का उपयोग !

देव-इन्द्र भी सदा तरसते
जिस मानव तन को पाने हित।
वह मानवतन पाकर तुमने
कहो, किया कितना निज, परहित ?

नरक द्वार !

मद्य, मांस का भक्षण करता
पचेन्द्रिय वध जो करता।
महाआरम्भ परिग्रह वाला
नरक द्वार पर पद धरता।।

ममता !

ममता जीवन का बन्धन हैं,
रूप हजारो इसके है,
धन-पद-संप्रदाय ओ परिकर,
नाम प्रतिष्ठा-यश के है।

जीवनचक्र !

कभी नरक के अन्धगर्त मे
कभी स्वर्ग मे था झुलता।
कीट-पतग कभी पशु, मानव,
जीवन-चक्र रहा चलता ।।

चचल जीवन !

कमल-पत्र पर जल-सीकर सम
क्षणभगुर है चचल प्राण !
आयेगी जब मृत्यु भयानक
कौन बनेगा तेरा त्राण !

ओस-बिन्दु !

झूठी काया, झूठी माया
दो दिन की जिन्दगानी है।
जिस को मुक्ता समझ रहा,
वह ओस–बिन्दु का पानी है ।।

मुरझाने को !

उमड-उमड कर आए बादल
अवनी पर ढल जाने को।
खिले सुमन उपवन में केवल
मुस्काकर मुरझाने को ॥

लघु जीवन !

अलि-गण के संग में हसती-सी,
प्रातः नन्ही-सी कली खिली।
अविकल्पित हिम-आघातो से
निशि में वह मूर्च्छित हो चली ॥
कितना लघु जीवन है जग का
इसमे भी कितना भय पद-पद !
क्यो सावधान नही हो जाता
सिर पर है कितनी खड़ी विपद !!

संयोग-वियोग !

है सयोग सुखद स्नेही का,
और वियोग दुखद उसका।
बादल की छाया ज्यो है ये
वश इन पर चलता किसका ?

मिट्टी में मिल जाना ।

तन-धन-सुत प्रिय पत्नी को तज
इक दिन जाना है निश्चित ।
मन्त्री ओ मजदूर भले,
मिट्टी मे मिल जाना निश्चित ॥

पाप मत कर ।

पाप मत कर, आप को पा[1]
आप सम पर को समझ !
स्नेह, करुणा से हृदय भर
क्रूरता का दोष तज !!
पाप है पथ नरक का,
नर—अक[2] जहाँ पाते सदा ।
धर्म जो धरते हृदय,
मिलती उन्हे सुख सम्पदा ।।

चार दिन की चांदनी !

चार दिनो की चटक चाँदनी
आखिर रात अँधेरी है ।
मुरझायेगे फूल खिले जो
बस, थोडी—सी देरी है ॥

---

१. पा + आप
२. नर + अक=दुख

क्षणिक शृंगार !

सागर की छाती पर लहरें,
रचा रही है नव शृंगार !
मिट जाता वह अगले क्षण मे,
कितना नश्वर है संसार !

सांस वायु !

व्याधि—मन्दिर देह है,
विश्वास क्षण भर का नही।
सांस वायु है तरल,
इसका भरोसा है नहीं।
पुण्य-वल जब तक सवल है,
इन्द्रियां जब तक समर्थ।
कार्य अपना सिद्ध कर लो,
वाद पछताना है व्यर्थ !

विद्या-विहीन !

विद्या, सुविवेक रहित मानव,
आकृति से केवल मानव है।
पशु मे, उसमें कुछ फर्क नहीं,
निष्फल उसका मानव-भव है !

कलियाँ !

जिस डाली पर देखो कलियाँ
चटक—चटक कर खिलती।
ले अगडाई, मस्त पवन सग
बांहें भर—भर मिलती।
आज उसी डाली पर देखी,
मुरझाई—सी रोती !
गन्धहीन जर्जर बेबस—सी,
धूलि-विलुण्ठित होती !

तीन रूप !

चीटी का संचित धान्य-कोष,
मधु-कोश मक्षिका का संचित।
हो जाता नष्ट, समूल वृथा,
लोभी का द्रव्य अतुल सचित !
जो दान किया, वह सार हुआ,
खाया सो, वृथा गवाया है !
जब चले प्राण अगले पथ पर,
तब हुई पराई माया है।

साथ क्या जायेगा ?

पर-भव से क्या लाया सग में,
और साथ क्या जायेगा ?
हाथ पसारे, मरघट द्वारे
अन्त जलाया जायेगा ।।

बीती घड़ियाँ !

समझ सोचले मानव ! इतना
बीती घडियाँ फिर नही मिलती ।
टहनी से जो टूट चुकी वे,
टूटी कलिया फिर नही खिलती ।।

जगत का खेल !

कैसा अद्भुत और गजब है,
खेल जगत का अचरजकारी ।
वने भिखारी क्षण मे राजा,
वनी रानियाँ भी पनिहारी ।।

मृगतृष्णा !

इन्द्र धनुष-सी चचल माया
क्यो भरमाया पागल मन !
मृगतृष्णा के पीछे अविरल,
व्यर्थ किए जाता धावन ।

पछताएगा !

वैभव-बल-बुद्धि लुटाया है
जिसने यौवन की मस्ती मे।
पछताएगा सिर धुनकर वह
ढलते जीवन की सुस्ती मे।

फूटा घट

अपनी किस्मत के सुख दुख हैं,
अब जाकर किसे पुकार करे।
जब अपना ही घट फूटा है, (तो)
सागर से क्या तकरार करें ?

मृत्यु-नागिन !

सोनेवाले भले न सोए
रात बीतती जायेगी।
नहानेवाले भले न नहाए
नदिया बहती जायेगी॥
गिननेवाले गिने न चाहें
घड़ियाँ बीती जायेगी।
मधुर—दुग्ध जीवन का मृत्यु—
नागिन पीती जायेगी॥

क्या विश्वास ?

तरल-लहर, बुद्बुद, अरु चपला,
कामनियो के चपल-विलास।
ज्वाला, सर्प, सरित ओ मन के
वेगो का है क्या विश्वास ?—

जीवन मृत्यु के मुख में

प्राची से पश्चिम मे आकर
चमक—चमक रवि ढल जाता।
अधियारे का साथी दीपक
जल-जल कर के बुझ जाता॥
चांद सितारे टिम—टिम करते
नित निशान्त में छुप जाते।
त्यो जीवन के क्षण, क्षण—क्षण में
नित मृत्यु—मुख में जाते॥

महाकाल !

यह महाकाल का क्रूर वक्त्र;
कोई भी नहिं बच पाया है।
इसने दुर्जय योद्धाओ को,
क्षण भर मे ग्रास बनाया है॥

एक समान !

वीर बहादुर, दीन—हीन भी
कीडी–कुञ्जर एक समान।
महाकाल के क्रूर गाल से
कौन बचा पाया निज प्राण।

आज—कल !

कल जो करना, आज उसे कर
कल की कोई आश नही।
तरल-पवन-सा सरल सास है
क्षण भर का विश्वास नही।।
पुण्य कर्म मत कल पर छोडो,
पाप कर्म मत आज करो।
कला आज-कल की यह समझो,
जीवन का अन्दाज करो।।

कल !

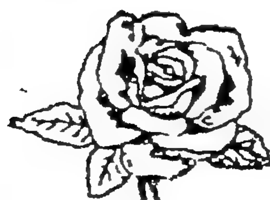
क्या मालुम है कल का 'तुम' को
कल पर फिर क्यों अटकल है ?
कल करने का कार्य आज कर,
जीवन की गति चचल है।

घड़ी की टिक टिक...

तेरी कलाई पर बधी (जो)
टिक–टिक सुनाती है घडी।
क्षण---क्षण बडा है कीमती
सार्थक बनाले हर घडी ॥

निष्कामवृत्ति ।

जागने का अर्थ है,
कर्तव्य निज पालन करो।
कर्म मे निष्कामवृत्ति,
हृदय से धारण करो।




श्रेय
और
प्रेय

श्रेय–प्रेय !

श्रेय तुम्हारा जीवनव्रत है
ऊर्ध्वगमन का मगल पथ ।
उसी मार्ग पर बढ़ता जाए
पुण्य–प्रेय का पावन-रथ ।।

महापुरुष को वन्दन !

मन—वचन—कर्म की वृत्ति मे
है एकरूप जिसका जीवन !
अन्दर बाहर मे नही अन्तर्
उस महापुरुष को अभिवन्दन !

प्रेम झरने !

महापुरुष के जीवन-गिरि से
बहते मधुर प्रेम के झरने।
इसीलिए तो आता मानव
त्रिविध—ताप मन का हरने ॥

महापुरुष की परिभाषा !

लोभ—मोह—यश—भय के अंधड़
उसको नही हिला सकते।
निष्ठावान मनस्वी को
कोई भी नही डिगा सकते।
यौवन के झंझावातो मे
ध्रुव बनकर जो रहता है।
सदाचार के ज्योतिपुंज को,
महापुरुष जग कहता है ॥

सत वृत्ति !

दो ही वृत्ति सत जनो की
देखी सुमन–गुच्छ–उपमान।
या तो शिर पर शोभित होते
या वन मे ही होते म्लान ॥

सज्जन !

धन, वैभव पाकर के सज्जन
बहुत नम्र बन जाते है।
देखा जैसे महावृक्ष को
फल पाकर झुक जाते हैं,
मगर विपत्ति मे रहते है
दैन्यरहित, वे ऊर्ध्वमुखी
जैसे फल झड जाने पर
हो जाती ऊंची डाल, झुकी।

महावृक्ष !

धर्म भूमि पर तरु सम जो नर
अविचल हो डट जाते है;
सकट के झझावातो मे
कभी नही घबराते है।

फल-फूलो से परिवृत होकर
जग मे शोभा पाते है।
छाया से उपकृत कर जग को
महावृक्ष कहलाते है।
धन्य !

हृदय दया से पूरित उज्ज्वल,
सरल--मधुरता युत वाणी।
दानालकृत कर, तन परहित--
अर्पित, धन्य वही प्राणी॥

एक जैसे !

वीर पुरुष है वही जगत मे
वचन निभाना जो जाने।
प्राणो से भी अधिक कीमती
कही बात को जो माने।
कहे वही जो कर सकते है,
करे वही जो कहते है।
बाहर भीतर अन्तर, नही कुछ,
इकजैसे ही रहते है।

दिव्यजीवन !

पर-हित जीना, सच्चा जीवन
वही दिव्य-जीवन जग में।
लिए स्व-हित के तो जीते है
कीट-पतगे भी जग मे।

आदर्श जीवन !

सदय-हृदय हो जिस सज्जन का,
वाणी सत्य विभूषित हो।
उसका गौरव अक्षय जग मे,
जीवन जिसका पर हित हो।

जन से जिन !

वाणो मधुर, सरल निश्छल मन,
और सतत सेवा-रत जीवन।
इस रत्न-त्रय से हो जाता,
जन मे जिन, नर से नारायण !

सफल जीवन !

सरल हृदय, अरु विनयशील मन,
सेवाभावी मज्जन नर।
मानव जीवन सफल बनाता,
सुखद, सुभग पुण्यार्जन कर।

दो उत्तम !

दो पुरुष जगत मे उत्तम है,
उत्तम उनका जीवन—दर्शन।
है क्षमाशील, शक्तियुत हो,
दानी है, होकर के निर्धन।

तीन मंगल !

वाणी जिसकी सार्थ, रसीली,
और सुशीला प्रिय नारी।
लक्ष्मी दानपरायण जिसकी,
जीवन वह मंगलकारी।

पण्डित कौन ?

मनोविकारो की शाति हित
शास्त्र हुए हैं सब निर्मित।
जिसका मन शम-दम सयुत है,
वही शास्त्रविद् है पण्डित।

संतुष्ट मुनि !

सयमशील अकिचन प्राणी,
शान्त और समचित्त प्रसन्न।
है सन्तुष्ट मनुज के खातिर,
सर्व दिशाएं सुख—सम्पन्न॥

दुर्लभ पुरुष !

तीन पुरुष है जग में दुर्लभ,
यौवन में संयमअभ्यासी।
विद्वान बने, पर विनयशील,
दानी होकर के मृदुभाषी !

अमरता का मार्ग !

अमर होना, अगर जग मे,
मार्ग यह है बता देना !
'महाशिव' रूप लेकर के,
गरल पीकर पचा लेना !

जीवन पुष्प !

जीवन है इक पुष्प की भांति,
सतत सुरभि फैलाए जो !
युग–युग तक गुण-गन्ध विश्व में,
स्मृतियाँ बनकर छाए जो !

जीने की कला !

विष से भी अमृत लेने का,
जिसका जीवनव्रत है सुन्दर !
जीवन की कला मिली उसको,
अमृत–मय जग उसके खातिर !

जीवन क्या है ?

छोटे छोटे सत्कर्मों का,
जीवन सहज समुच्चय है।
छोटे-छोटे रजकण का,
सघात विशाल शिलोच्चय है।

जीवन-क्रम

कली फूल मे विकसित होती,
जीवन का यह क्रम है।
मगर फूल से आगे क्या है?
छलना है, और भ्रम है।

सुख दुख के दो तार

सुख दुख के दो तार जुडे है,
जीवन विद्युत-धारा में।
एक तार से बोलो कैसे,
हो सकता उजियारा है?
महासागर मे भी आता है,
भाटा कभी, कभी फिर ज्वार!
डरो न तुम उत्थान-पतन से,
है ये जीवन के आधार!

आशा की दीपशिखा !

दुख की तमसिल कृष्ण निशा में,
जलती है झिलमिल-झिलमिल !
आशाओ की दीप-शिखा यह,
जीवन-पथ करती ज्योतित !

साधु संगति !

मन की जडता हरती है,
भरती जीवन मे सत्य प्रकाश !
साधु जनो की सगति पावन,
करती है पापों का नाश !

संगति के अनुरूप !

जल धारा की बूद गिरी जब,
तप्त-लौह पर, शेष हुई।
गिरी बूद इक शतदल पर तो,
द्यु ति—मुक्ता सविशेष हुई।
उसी समय एक बूंद सीप मे,
गिरी, हुई वह मुक्ता—रूप।
वस्तु एक, पर रूप भिन्न,
होते हैं सगति के अनुरूप ।।

तीन कोटियाँ...

नीच पुरुष विघ्नो से डर कर,
नही करते हैं कार्यारम्भ !
विघ्नो के आने पर मध्यम,
तज देते करके आरम्भ ![1]
पर, विघ्नों के द्वारा ताडित,
होने पर भी बारम्बार !
उत्तम नर प्रारब्ध कार्य को,
कभी न तजते किसी प्रकार ॥

तीन परिभाषाएं...

'सज्जन' तो निज स्वार्थ त्याग कर
करते हैं नित पर-उपकार ।
निज-स्वार्थों की रक्षा कर के,
पर हित मे 'जन' बने उदार ।
वे 'दुर्जन' जो तुच्छ स्वार्थ हित,
करते औरो का सहार ।
किन्तु निरर्थक परहित नाशे,
कौन हुए वे, करो विचार ?

शोभा !

मुख की शोभा सत्य वचन है,
उर की शोभा स्वच्छ विचार।
दान हाथ की शोभा सुन्दर,
तन की शोभा पर-उपकार।

कार्य रूप फल !

कूप खोदने वाला मानव,
स्वयं अधस्तल मे जाता !
महल बनाने वाला ऊपर,
कार्य रूप ही फल पाता !

कण और क्षण

कण-कण कण, पर्वत बन जाता,
कण-कण बन जाता 'सागर' !
जीवन के कण-कण, क्षण-क्षण का,
सदुपयोग यथोचित कर !

बच कर चल !

इधर क्रोध का अनल धधकता,
उधर वासना दलदल !
इन दोनों से बचकर चलता,
मन मेरा शुचि शीतल !

नया साहस...

खण्डित विश्वासो का सपना,
जो जीवन का भार बना था।
अपनी छाया भूत बनी थी,
तट भी वो मझधार बना था।
खोया—खोया इतने दिन था,
आज पा चुका मैं अपना धन!
टूटा साहस पुनः जुडा, यो,
जैसे आया बिछुडा साजन!

कर्त्तव्यपथ !

क्षितिज के उस पार कोई,
गा रहा है भैरवी।
बढ चलो, कर्तव्यपथ पर,
प्राण की देकर हविः।

नैतिकबल !

नैतिक आस्था का बल लेकर,
मजिल तक बढते चलो सतत।
झुक जाये चरणाघातो से,
भय-सकट-विपदा के पर्वत।

संकल्पवान !

छोटा-सा भी कार्य अगर नर,
करने लग जाते हैं।
खो कर के विश्वास हृदय का,
बिच में ही रुक जाते हैं।
किन्तु धीर नर बड़े—बड़े,
कामों को झटपट कर लेते।
वे संकल्पबली अपनी,
नौका को तट तक खे लेते।

बढ़ता जा !

आकर दुश्मन तेरे पथ में,
देवे कंटक भले बिछा !
भय के भूत खड़े कर देवें,
कष्टों की विकराल बला !
विश्वासों का बल, मन में भर,
धीरज के ले दीप जला।
अपनी मंजिल पर अविचल मन,
साथी ! बढ़ता जा, चलता जा।

विश्वासों का सम्बल !

मंजिल दूर नही है राही !
ले विश्वासो का सम्बल !
चलता जा उत्साह भरे मन,
खडी सामने है मंजिल !!
श्याम घटाए तेरे पथ मे,
जल बरसाएगी शीतल !
और कोध कर चंचल चपला,
पथ दिखलाएगी मजुल ॥

मूल केन्द्र !

सभी पुरातन गलत नही है,
सही नही सब अर्वाचीन !
सत्य कसोटी होती सब की,
भले पुरातन, भले नवीन ॥
दृष्टि बदलनी होगी साथी !
तजना होगा यह व्यामोह।
सत्य तुम्हारा मूलकेन्द्र है,
बाकी सब है माया मोह ॥

मोह और प्रेम !

हैं मोह प्रेम दो भिन्न तत्त्व,
वह काँटा, वह सुकुमार फूल।
है प्रेम हृदय का दिव्य रूप;
ओ मोह मनुज मानस की भूल ॥

समभाव !

सूर्य-चन्द्र सम बनकर चमको,
करो न प्रत्यर्पण की आश !
एकभाव से राव-रक को,
रहो बांटते दिव्य-प्रकाश !

सर्वोदय का गीत !

सेवा, समता, सविभाग औ,
सद्भावो का मजुल मीत।
मानव मन मे प्रीत जगाए,
सर्वोदय का सुन्दर गीत ॥

दुर्लभ संगम !

'श्री' वह जो मदशून्य, मधुर हो,
'ह्री' वह जिसमें शौर्य विवेक।
'धी' वह पर उपकार-परा,
सगम तीनों का दुर्लभ देख ॥

उत्तम !

उत्तम शीलवती नारी है,
लता पुष्पवती उत्तम।
अर्थवती वाणी जग उत्तम,
विनयवती विद्या उत्तम ॥

भूषण !

विद्या मानव का भूषण है,
शील विभूषण नारी का।
वाणी विद्वत्ता का भूषण,
दान सकल ससारी का ॥

पशुजीवन !

जो जीवन साहित्य, कला—
सगीत सुरुचियो से है हीन।
मानव आकृति मे वह पशु है,
केवल सीग-पूछ से हीन।

विद्या-वैभव !

क्षमा श्रेष्ठ बान्धव है जग मे,
क्रोध शत्रु सब से भारी।
विद्या वैभव श्रेष्ठ और,
अज्ञान गरीबी दुःखकारी ॥

विद्याधन !

चोर न हरता, जल न गलाता,
अग्नि जला सकती न कभी।
बधु न वटवारा कर पाते,
लेती नही सरकार कभी ॥
याचक जन को देने पर भी,
बढता है नित जिसका कोष।
कल्पवृक्ष सम विद्या धन यह
देता नित मन को सतोप ॥

निन्दा का साबुन !

अपनी निन्दा सुनने मे तू,
इतना क्यो कतराता है ?
निन्दा के साबुन से तेरा,
मैल धुला सब जाता है ॥

दीपक को !

अन्धकार से घनी निशा मे,
ज्योतिदान करते जाओ तुम !
जलना जीवन की परिभाषा,
जगहित नित जलते जाओ तुम ॥

नीति का आधार !

स्वजनों मे चातुर्य, भृत्य पर दया ;
शठो से शठताभाव ।
प्रीति साधु से, नीति लोक मे ,
विद्वानो से नम्र स्वभाव ।
शौर्य शत्रु पर , क्षमा दीन पर ,
मूर्ख जनो से मौनाचार ।
कुशल कलाओ मे जो मानव ,
वही नीति का है आधार ।।

जैसा स्वभाव !

नीच श्वान ललचाता लखकर ,
मास-हीन हड्डी का टूक ।
किन्तु सिह तो मत्त गजो के ,
मधुर मास से हरता भूख ।
जैसा जिस मे सत्त्व-शौर्य है ,
तदनुरूप करता है यत्न ।
पापी पाप परायण–वृत्ति ,
साधु सज्जनोचित सयत्न ।।

स्वभाव भेद !

मोती और मछली दोनों ही,
सागर के अन्तर में रहते।
मुक्ता गचुलेते राजहस,
बक-मीन निगलते ही रहते।
यह भेद बताता दोनो के,
दो रूप स्वभाव धर्म के है।
सज्जन सद्गुण, दुर्जन दुर्गुण,
ये भेद स्वभाव मर्म के है।

मीठी वाणी !

जब वोलो, तब मीठी वाणी,
मुख से फूल वरस जाये।
जादू हो ऐसा उसमे, कि,
पत्थर पानी हो जाये॥

मधुर वचन !

मधुर वचन शीतल लहरी ज्यो,
सव को सुखकर होता है।
करता हृदय प्रफुल्ल मनुज के,
मन का कल्मप खोता है।

वचन का चयन !

वचन का चयन करो हर बार ,
बुद्धि के कांटे पर तोलो !
द्वार मुख का खोलो पश्चात् ,
ज्ञान का द्वार प्रथम खोलो ॥

मधुर मिसरी की हो डलिया ,
सत्य का वजन भरा जिस मे।
गले उतरे श्रोता के शीघ्र ,
प्रभावकता भी हो उसमे ।

महापुरुष का वचन !

महापुरुष का वचन—रतन ,
रहता है अधर—कपाटावृत ।
वहुत जरूरी उपयोगी ,
होने पर ही होता निःसृत ।
नि.सृत होने पर फिर निष्फल ,
पुन लौटता कभी नही ।
गज का निकला दात वदन मे ,
पुन लौटता कभी नही ।

वाणी !

वचनवीथि पर रथ लक्ष्मी का ,
मित्र बान्धवो का है वास ।
जीवन—मरण , बन्ध और मुक्ति ,
वाणी मे सबका आवास ।

जिह्वा !

जिह्वा नही , यह एटमबम है ,
अणुशक्ति का है भण्डार ।
क्षण भर मे विध्वसक बनकर ,
त्वरित मचाती हाहाकार ।।
और सुखद सुन्दर सपनो का ,
कर सकती है नवनिर्माण ।
मुरझाई कलियो मे क्षण मे ,
भर सकती है नव मुस्कान ।

वाणी से आहत !

वाणों से आहत मानव तो ,
एकबार मर जाता है ।
पर, वाणी से आहत मानव ,
तड़फ-तडफ रह जाता है ।

उतनी बात कहो !

उतना भार उठाओ साथी !
जितना ले चल सकते हो।
उतनी बात कहो तुम मुख से,
जिसे पूर्ण कर सकते हो।

वाणी !

वह वाणी क्या वाणी, जिसमे,
मधुर—स्नेह झंकार नही।
वह प्राणी क्या प्राणी, जिसको,
पर-प्राणो से प्यार नही ?

प्रेम का स्रोत !

सब ऊँच-नीच के भेद मिटै,
समता-रस ओत-प्रोत रहे।
मानव-मानव के मानस में,
फिर मधुर प्रेम का स्रोत बहे !

कुशलता...

मीठे जल को खारा करना,
इसमे कौन कुशलता कहता !
खारे जल को मीठा करना;
इसको विश्व कला है कहता !

फूल की सार्थकता !

फूल खिलते है अनेको ,
रग पाकर नित-नया ।
फूलना है सार्थ उसका ,
जो पराग लुटा गया ॥

स्नेह का झरना !

वह जीवन सार्थक है जिसमें ,
स्नेह का झरना बहता है ।
वैर द्वेष का गन्दा जल तो ,
हर घट-घट[1] में रहता है !

फूल का जीवनव्रत !

फूल महकता है मधुवन मे ,
करता मधुर सुरभि का दान !
पथिकजनो को प्रीणित करता ,
करते मधुकर-गण मधु-पान !!
पर-हित अर्पण हो जाना ही ,
उसका पावन जीवनव्रत है ।
हँसना और हसाना जग को ,
यही सुमन का जीवन-पथ है ॥

---

१. मन के घट में

मन का नल !

मन के नल मे जल ही जल है,
अगर खोलना यदि जानो।
इस पतग की डोर बहुत है,
मगर खीचना तो जानो !

सस्कारहीन शिक्षा !

व्यर्थ शिक्षा सकल है,
सस्कार शुद्धाचार बिन।
फूल है क्या काम का,
मधु-सुरभि के सभार बिन।

मन की मृदुता !

मन की मृदुता से बन जाते,
दुश्मन भी निज मन के मीत।
काट डालता है पत्थर को,
होता है जब लोहा शीत॥

सुन्दर स स्कार !

सुन्दर संस्कारों से बनता,
अनगढ नर भी पुरुष-प्रधान।
कलाकार के हाथो से ज्यो,
पत्थर बनता है भगवान॥

इच्छाओं का विश्लेषण !

मन है इच्छाओ का सागर,
प्रतिपल उठती लहर अनन्त !
भली बुरी का विश्लेषण ही,
करना सिखलाते सद्ग्रन्थ !
पूर्ण न हो सकती हर इच्छा,
और नही हितकारी वह ।
विश्लेषण कर, सदिच्छा को,
पूर्ण करो, सुखकारी यह ।।

ध्येय !

निज तन-इन्द्रिय मन को प्रिय जो,
वही न सबका होता प्रिय ।
किंतु निजात्मा को जो प्रिय है,
निखिल-विश्व हित है वह श्रेय ।

—※—


व्यक्ति
और
समाज

व्यक्ति और समाज ।

व्यक्ति सृष्टि का मूलतत्त्व है,
वही राष्ट्र का मूलाधार ।
है सापेक्ष समाजशक्ति का—
संगम, पाने को विस्तार ।।

मानव-सृष्टि

इस असीम नभ के प्रागण मे ,
तारे अगणित झिलमिलते ।
इस मानव–सृष्टि पर वैसे ,
रहे सभी हम हिलमिलके ।

संघ !

संघ है अमर-शक्ति का स्रोत ,
सघ ही है, जीवन का प्राण ।
सघ देता, निदाघ—सतप्त-
मनुज को, शतशाखी ज्यों त्राण !

सघ का अंक !

व्यक्ति स्वयं में मूल्य-शून्य है ,
केवल अंक रहित बिन्दु ?
किन्तु, संघ का अक प्राप्त कर ,
बनता अमित शक्ति—सिन्धु ॥

जागे !

जागे, आज समाज जो,
मूर्च्छित, मानवता जागे।
राष्ट्र, राष्ट्र के बीच पुनः,
जुड जाएं सरल स्नेह धागे॥

मानव !

मानव ही वह श्रेष्ठ जीव है,
जिसमें अद्भुत एक कला।
जिसने मोहक मुस्कानो मे,-
जग के क्रन्दन को वदला।

मानवता का मूल्य !

धन से कभी न आको साथी !,
मानवता की तुम कीमत !
क्या असीम सागर को करना,
चाहते अञ्जलि मे सीमित !
सेवा, समता, स्नेह, सरलता,
मानवता की है थाती !
अहकार, अन्याय - अनीति,
देखी धन से भी आती !

बन्धु !

मनुज का पशुतामय व्यवहार,
आज अब सहा न जाएगा।
बन्धु-बन्धु है मानव मात्र,
शत्रु वह कहा न जाएगा।।

भीतर-बाहर...

भीतर मे है रूप जगली,
कूकर-शूकर से बदतर।
बाहर मे कर टीप-टाप,
कहलाता सभ्य, सुशिक्षित नर !

आनन्द कहाँ ?

मानव का बौद्धिक-बल यद्यपि,
पहले से अब अति विकसित है।
यान्त्रिक साधन, सुविधाए भी,
उसके कर मे अब सचित हैं।।
किन्तु कहाँ उल्लास हृदय मे,
जीवन मे आनन्द कहाँ ?
मानवता मूर्च्छित-सी उसकी,
मन मे छाया द्वन्द्व अहा !

मानव की पहचान !

मानव की पहचान यही जो,
मानवता से प्यार करेगा।
उस मानव के जीवन पथ का,
अभिनन्दन समार करेगा ॥

मनुष्य वह !

मनुज वह, जो सके जग मे,
धधकती आग बन कर के।
विश्व की वेदनाओ को,
सहे हिमवान बन कर के ॥

समाज के रंगमंच पर

इस समाज के रगमच पर,
कितने नाटक खेले जाते !
धर्म-क्रांति के लगा मुखौटे,
रूढिवाद के चेले आते !

अधूरे-पण्डित !

समझाना है सरल, मूर्ख को,
और सरलतम है विद्वान।
किन्तु अधूरे पण्डित को तो,
ब्रह्मा नही दे सकते ज्ञान ॥

पशुजीवन ।

जिन में नही विद्या, तप सयम,
शील, धर्म और दान नही।
जिन में अपने मानवपन के,
गौरव का कुछ भान नही ।।
उनका जीवन जगतीतल पर,
अर्थ शून्य है, भार स्वरूप !
केवल मानव की आकृति मे,
घूम रहें है, वे पशुरूप।

सदाचार ।

वह दरिद्रता अच्छी जिसमें,
सदाचारयुत है सद्ज्ञान।
दुराचार युत मूर्ख जनो का,
अच्छा नही होना धनवान ।।
फटे पुराने चिथडो मे भी,
स्वस्थ-देह लगता अभिराम।
पर, मरियल रोगी देही को,
बहुत सजाने से क्या काम ?

सदाचार का स्नेह !

नर जीवन दीपशिखा को तुम,
दो सदाचार का स्नेह सतत।
अग-जग को आलोकित करती,
होगी उज्ज्वल-नव ज्योति स्फुरित॥

शान्ति का मार्ग !

'शान्ति-शान्ति चिल्लाने से तो,
नही शान्ति का दर्शन होगा।
भोजन-भोजन रटने से क्या,
कभी उदर का पोषण होगा?
सदाचार सयम से सयुत,
जब निज जीवन कर पाओगे।
शान्ति देवता के मन्दिर मे,
प्रथम चरण तब धर पाओगे!

सेवा की मधुवेलि !

नर-सेवा ही नारायण की—
सेवा सदा कहाती है।
निस्पृहसेवा की मधु-वेली,
अमृत सम फल लाती है।

कुटिया बनाम महल !

जहाँ प्रेम का निर्झर बहता ,
मधुर-मिष्ट-स्नेहिल वाणी ।
उस कुटिया पे राजमहल की ।
सुषमा भी भरती पानी ॥
जहाँ कटुक शब्दो की कट-कट ,
मनोद्वेष, मालिन्य भरा ।
राजमहल वह, मरघट सम है ,
वहाँ कलह का काल खड़ा ॥

झोंपड़ी की कर्मठता !

मुझे महल से द्वेष नही है ,
मगर झोपडो से है प्यार ।
आखिर इनकी कर्मठता ही ,
करती महलो का विस्तार !

कुटिया और महल !

मुझको प्रिय है जहा शान्ति हो ,
उस कुटिया की शीतल छाया ।
नही चाहिए , मानवता के ,
क्रन्दन-स्थल-महलो की साया ॥

शोषक !

है हृदय उत्तप्त कितना,
शोषको के पाप से।
जल रही है घोर ज्वाला,
शोषितो के शाप से।
पी रहा वह खून पर का,
खून अपना जल रहा !
नर देह के शुभ-आवरण में,
क्रूर राक्षस पल रहा !

श्रम !

श्रम जीवन की सतत साधना,
श्रम है तप.कर्म उज्ज्वल !
सदा महकता श्रम-सीकर मे,
मानव जीवन का परिमल ॥
श्रम ही ध्रुव है, श्रमण धर्म का,
श्रम से गांधी भी चमके।
सृष्टि का सौन्दर्य अमल नित,
श्रम की बूदों मे चमके ॥

पोषण-शोषण

दुहना चाहते यदि जन-गौ को,
पोषण करो प्रथम इसका।
पोषण पूर्वक शोषण करके,
वरण करो निर्मल यश-का।

दीप-स्तम्भ !

दीप-स्तभ हैं महापुरुष जो,
सब को देते दिव्य-प्रकाश।
उनके उज्ज्वल-आदर्शों पर,
चलकर करता विश्व विकास।

देव !

निज-पीडा सम पर पीडा को,
अनुभव करते है मानव।
किन्तु देव वह, जो कि मिटाने।
अर्पण करता तन-वैभव ॥

दीपक और सन्त !

तिल-तिल करके दीपक जलता,
तमस् जगत का हरने को।
क्षण-क्षण सत सतत गलता,
दुख-द्वन्द्व दूर सब करने को।

महापुरुष का आश्रय !

महापुरुष का आश्रय जग में,
मूल्य बढ़ाता जीवन का।
सीपी-गत जलकण भी गौरव,
पाता है मुक्ता-कण का।

परउपकारी !

पर-उपकारपरायण मानव,
करते पर-उपकार सदा।
अगर बुरा करता है कोई,
करते उसका मगर भला॥

सन्त !

पर उपकारी संत जगत को,
देते निस्पृह हो उपदेश।
जैसे फले हुए तरु जग को,
देते छायायुत परिवेश॥

महापुरुष !

उदय-अस्त में समभावी जो,
सुख-दुःख में मुसकाता है।
जिसका हृदय अगाध जलधि-सा,
(वह) महापुरुष-पद पाता है।

सत्पुरुष का मन !

कर सकता उत्पन्न नही जग,
सत्पुरुषो के मन में लोभ !
क्या मछली की उछल-कूद से,
हो सकता सागर में क्षोभ ?

वर्तमान नेता...

कुछ बादल नभ मे आते है,
जो गर्ज-गर्ज कर रह जाते।
एक बूद न जल की बरसाते,
थोथे बादल वे कहलाते ॥
इन वर्तमान नेताओ का,
जीवन थोथे बादल जैसा।
उपदेश-गर्जनाए भारी,
आचरण नही करते वैसा ॥

सन्त पुरुष !

कुछ बादल जल भर के लाते,
बिन गर्जे जल बरसा जाते।
चुपचाप धरा को तृप्त बना,
नव जीवन जग मे सरसाते।

है सन्तजनो का जीवन भी,
उस सघन जलद जैसा पावन।
मुख से कुछ वात नही करते,
कृति मे होता है शिव–दर्शन ॥

अंगूरी जीवन !

कहनी करनी मे भेद नही,
कोमल मानस निर्मल निर्भय।
वह उज्ज्वल जीवन अँगूरी,
वाहर भीतर होता मधुमय ॥

नारियली-जीवन !

मन मृदुल स्नेह से सपूरित,
निर्द्वन्द्व, निराकुल औ निर्वैर।
भय–कष्ट-सकटो मे अविचल,
वह जीवन जैसा नालिकेर ॥

बदरीफलीय-जीवन !

भीतर में कुलिश-कठोर हृदय,
मुख पर चिकनी-चुपडी बातें।
वदरीफल जैसा जीवन वह,
भीतर–भीतर चलती घाते ॥

सुपारी जैसा जीवन !

कुछ मानव ऐसे भी होते,
बाहर भीतर में कुटिल–कठोर।
दुष्टाशय, दुर्मुख होते हैं,
पूगीफल जैसा जीवन-कोर॥

मातृभूमि की दीप शिखा !

सन्नारी ही सदा देश में,
अभिनव ज्योति जलाती है॥
सुन्दर-उज्ज्वल आदर्शों से,
घर को स्वर्ग बनाती है।
जननी के गौरवमय पद को,
'तितली' बन मत हीन करो।
मातृ भूमि की दीप शिखा हो,
दिव्य–ज्योति मत क्षीण करो।

नारी की महिमा !

मिथ्या अह पुरुष का तुम को,
'अबला' कहता आया है!
अगर न होती तुम 'सबला',
वह 'सबल' कहाँ से आया है?

सुन्दरता का मूढ उपासक !
क्या जानेगा गुणगरिमा ?
धैर्य, शौर्य, औदार्य ज्ञान की,
समझेगा वह क्या महिमा ?

नारी !

नारी वत्सलता की मूर्ति,
ममता की सच्ची देवी है।
सेवा, सद्शील, तितिक्षा की,
समता की सच्ची सेवी है ॥

नारी का आदर्श...

सीता - सावित्री - दमयन्ती,
तुम्हे सिखाती है आदर्श !
सेवा-साहस और त्याग का,
भरो हृदय मे तुम उत्कर्ष !!
बहनो ! कैकयी और मन्थरा,
नारी का आदर्श नही।
जहाँ विश्व-मगल की पावन,
ज्योति-शिखा का स्पर्श नही !!

मित्र !

पाप कर्म से सदा बचाता,
करता समयोचित उपदेश।
दोष मित्र के दूर हटा कर,
प्रगटाता है गुण सविशेष ॥
सकट मे बन सच्चा साथी,
करता सभी तरह सहयोग।
पूर्व-पुण्य से ही मिलता है,
ऐसे मित्रो का सयोग ॥

परीक्षा !

कष्टो मे परखा जाता है,
मित्रो का स्नेह, धर्म, धीरज।
सुख मे जो सग रहा करते,
दुख मे वे कैसे जाते तज ?

मैत्री के दो रूप !

दुष्ट और सज्जन पुरुषो की,
मैत्री का है भिन्न प्रकार।
सुबह और साय की छाया,
जैसा दोनों का व्यवहार ॥

पहले बढती जाती है फिर,
क्रमश पाती है वह नाश।
किन्तु दूसरी पहले लघु हो,
पीछे पाती विपुल विकास ॥

मिलना !

दूध-पानी ज्यो क्या मिलना ?
मूल्य कम होता है इससे;
दूध चोनी का है मिलना,
मधुरता बढती है जिससे !

भामाशाहों से !

अय भारत के भामाशाहो!
देश पुकार रहा तुमको !
लिए देश के अर्पित कर दो,
अपने इस सचित धन को !!

किसान जागो !

जागो ! आज किसान ! देश की
धरती तुम्हे जगाती है।
दो बूंद पसीने के बदले मे,
मोती तुम्हे लुटाती है !

वीर जवानो !

सुनो देश के वीर जवानो !
भारत माता के प्यारे !
सिर्फ युद्ध के दूत नही तुम ,
हो शान्ति के रखवारे ।।

देश के कर्णधार !

कर्णधार जो देश धर्म के ,
खुद को मान रहे , सुन ले !
कुर्सी का व्यामोह छोड -
कर्त्तव्य मार्ग को वे चुन ले !
अधिकारो को नही बनाए ,
साधन यश , धन , इज्जत का ,
नही रहा कर्त्तव्यभाव (तो)
कारण होगा धिक्कृति का !

वैज्ञानिक से !

समझते थे आज तक ,
जिसको कि सर्जन-साधना !
खोज वह निकली तुम्हारी ,
मृत्यु की आराधना !

यात्री से !

इस अथाह समुद्र में यह,
नाव है पतवार विन।
पार कैसे जायगी यह,
बोल खेवनहार विन !!

राही !

अगर हिमालय टकराए तो;
टक्कर देकर चूर करो।
अगर गगन अडता हो, उसको,
झुकने को मजबूर करो।
सागर गर उफनाता हो तो,
कह दो मार्ग तुम्हे दे दे।
तूफानों से कह दो, किश्ती -
मांझी बनकर के खेले।

राही या दीवाना ?

है मार्ग कहाँ ! जाना है किधर,
मजिल का कहां ठिकाना है ?
जिसको मजिल का पता नही,
वो राही या दीवाना है।

विश्राम न ले !

तुम चलने वाले राही हो,
रुकने का तो नाम नही।
मंजिल जब तक नहि आ जाये,
लेना है विश्राम नही।

उठो ! युवकशक्ति !!

उठो ! जगो ! अब युवकशक्ति,
कर्त्तव्य पुकार रहा सन्मुख।
भर कर नव उत्साह हृदय मे,
बढ़े चलो, जय है अभिमुख॥
पावन संकल्पो का बल ले,
जागृत मन, सुलझा चिन्तन।
प्रतिरोधो को दूर हटा-
निर्माण किये जाओ नूतन।

युवको !

युवको ! जागृत हो अब तोडो,
ये कुरीति, रूढि बन्धन।
नव प्रकाश फैला दो भू पर,
स्वस्थ नीति का नव चिन्तन।

विद्यार्थी !

राष्ट्र की है मूल-निधि ही ,
आज का विद्यार्थि—जन ।
उसकी सुशिक्षा के लिए ,
करना सभी को है मनन ।।
नव्य ओ अतिभव्य घट मे ,
वस्तु जैसी तुम भरो ।
सस्कार वे होंगे अमिट ,
चिन्तन प्रथम इस का करो ।।

बालक का जीवन !

बालक के जीवन मे भर दो ,
संस्कारो की भव्य लड़ी ।
चाहे जैसा इसे बनालो ,
है प्लास्टिक की एक छड़ी ।।

सज्जन-दुर्जन !

सज्जन दुर्जन मे क्या अन्तर ?
दोनों का है सम आकार ।
बन्द स्वार्थ के घेरे मे इक ,
इकका मन है परम उदार ।।

इक बन्द सरोवर का जल है,
शैवाल कि जिस पर छाई है।
इक निर्मल पावन गगाजल,
शुचिता जिसकी मन भाई है॥

सज्जन का सहवास!

सज्जन का सहवास हमेशा,
सरस-मधुर और शान्त रहै।
महाजलाशय का तट जैसे,
हरा—भरा दिन रात रहैं।

साधु संगति!

कामधेनु और कल्पद्रुम,
चिन्तामणि चिन्तित फल देता।
किन्तु साधु का संग अनूठा,
अनचाहे सब कुछ देता।
देखा मैंने गन्दा जल भी,
निर्मल हुआ कतकफल से।
पापात्मा धर्मात्मा बनते,
साधु सग के शुचि-जल से।

रक्षापर्व ।

भगिनी के प्रति भाई का,
क्या कर्त्तव्य अमर है भूतल पर।
इसका उद्‌बोध कराता है,
रक्षा-बन्धन का पर्व मधुर।

रामराज्य का स्वप्न !

जन-जन के नयनो मे छाया,
है रामराज्य का स्वप्न मधुर।
जीवन मे है चरितार्थ हन्त !
रावण के राज्यो का व्यतिकर ॥

अतिथि ।

भारत की सस्कृति का गौरव,
यह विशद अतीत सुनाता है।
घर आया अतिथि देव तुल्य,
दधि-घृत से पूजा जाता है ॥

भारत भूमि ।

भारत भूमि का कण—कण भी,
है भ्रातृस्नेह से सना हुआ।
इस पर सौहार्द सरलता का,
चारु-चँदरोवा तना हुआ ॥

संकट अग्नि !

विपदाए ही चमकाती है,
महापुरुष के जीवन को।
पतझड की वे शुष्क हवाए,
महकाती है मधुवन को ॥
राम, कृष्ण, और वीर बुद्ध का,
ईसा, गान्धी का जीवन।
सकट अग्नि मे तप कर के,
निखरा ज्यो निर्मल-सुवरन ॥

अमृत भी · जहर भी !

फूल भी, काँटे भी खिलते,
इस धरा के धाम पर।
देव भी, और दैत्य भी,
अमृत कहीं, कही पर जहर ॥
देश ओ निज धर्म हित,
बलिदान भी होते यहाँ।
तुच्छ स्वार्थों के लिए,
कुछ धर्म को खोते यहां ॥

पुरखो की गाथा !

पुरखो की गौरव गाथा गा,
करते हो केवल अभिमान।
उनका उच्च चरित्र तुम्हारे,
जीवन मे नही है छविमान।

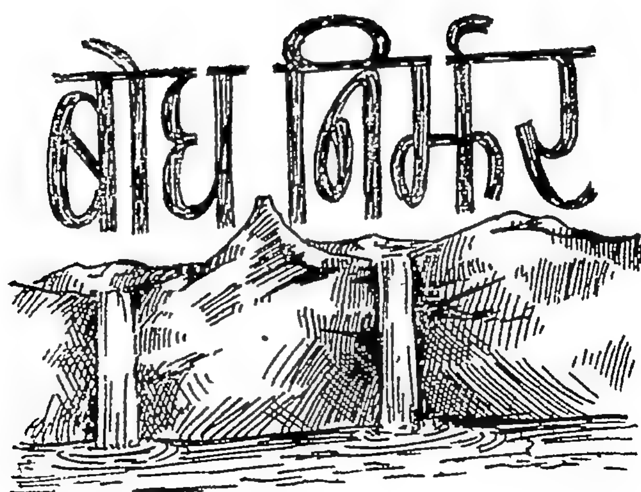
पुराने आदर्श !

भारत के नवयुवक ! उठो,
सीखो, पुरखों का वह आदर्श।
कुण्ठा-ग्रस्त तुम्हारा जीवन,
निश्चय साधेगा उत्कर्ष।
पुत्रो का कर्त्तव्य राम से,
योगीश्वर से नवस्फुरणा।
तप तितिक्षा महावीर से,
और तथागत से करुणा॥

नया प्रतिज्ञा पत्र !

एक हृदय हो, एक भाव हो,
वाणी सबकी एक पवित्र।
दुख सुख मे हम साथी होगे,
लिखिए नया प्रतिज्ञा पत्र॥

—*—


ਬੋਧ ਨਿਝਰ

परिबोध !

मानव ! अपनी मानवता का ।
अब तो करलो, कुछ परिबोध !
आत्मबोध से खत्म करो तुम,
आदर्शों का यह गतिरोध !!

वीतराग जय !

वीतराग जय ! विश्व हितकर !
खुले ज्ञान के नव उन्मेष !
सत्य, अहिंसा, अनेकान्त का !
दिया विश्व को शुभ सन्देश !

भारत माता !

हे तपोभूमि ! भारत माता !
करते जन शत-शत अभिनन्दन !
दिये जवाहर, गान्धी तुमने,
लाल, बिनोबा से नन्दन !

संघर्षों का पथ !

जीवन है संघर्षों का पथ,
अविरल गति, विश्राम नही।
रस निर्झर बहता है प्रतिपल,
सूखेपन का काम नही ॥

मैत्री के झूले !

मानव , मानव रहे मित्र बन ,
वैर लड़ाई को भूले ।
सुखी रहे सब जग के प्राणी ,
मैत्री के झूले झूले ॥

मन–मधुकर !

एक फूल की खिली कली मे ,
मधु प्यासा मधुकर उलझा ।
हुआ सूर्य बस अस्त, तभी तो ,
विकच-कमल दल भी मुरझा ॥

सुमन-कोश में मधुकर कैदी ,
लिए सुबह की स्वर्णिम आश ।
मधुर कल्पनाओ में डूबा ,
कभी विहँसता , कभी उदास ॥

मत्त हस्ति ने सुमन – गुच्छ को ,
तोड़ा , कुचला ; फैका दूर ।
मन-मधुकर की आशाए भी ,
होती रही सदा यो चूर ॥

ऐक्य का राग !

अपनी—अपनी ढपली लेकर,
मत आलापो अपना राग।
भाई—भाई मिल गुँजादो,
आज ऐक्य का पचमराग।

जैसी दृष्टि ! वैसी सृष्टि !

जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि,
अनुभव यह बतलाता है।
जैसा चश्मे का रग होता,
नजर वही रग आता है॥

रामराज्य...

जनता के अन्तर् मानस मे,
रामराज्य की चाह जगी।
किन्तु धर्म, नीति का पथ तज,
वह अनीति के मार्ग लगी।
कैसे हो साकार कल्पना,
रामराज्य आये कैसे ?
रावण चरित्र रचाने वाला,
राघव कहलाये कैसे ?

कृष्ण-सुदामा

कहां कृष्ण से मित्र जगत में,
करे सुदामा को जो याद।
फिरे सुदामा बहुत, कृष्ण विन,
कौन करे उनको आबाद॥

नेकी के बीज !

बीज मधुर नेकी के जिसने,
बोये जीवन-भूमि पर।
मन के सब परिपार्श्व रहेंगे,
हरे - भरे उसके सुन्दर॥

पक जाने पर !

देखो तो फल पक जाने पर,
कितने सरस मधुर होते !
मानव पाकर पकी उम्र, क्यों,
कटुता के भागी होते ?

कर्म की रेखाएं !

मिट जाती है कालान्तर मे,
लोहे की स्थिर रेखाए।
पर, नही मिट सकती है बन्धु !
कभी कर्म की रेखाएं॥

मन की आग !

वन की आग बुझाने खातिर,
काफी है सरवर का जल।
कई समुद्रों से नही बुझती,
मन मे जलती विकट-अनल॥

आग पेट की मांग रही है,
पाव चून की दो रोटी।
मन की आग विकट है, लाखो-
मन से तृप्त नही होती॥

भोगेच्छा की ज्वाला !

कभी न बुझ सकती भोगों से,
भोगेच्छाओं की ज्वाला।
घृताहुति से कभी अग्नि को,
बुझते क्या देखा-भाला ?

स्वार्थवाद !

भाषण में, संभाषण मे तो,
राष्ट्रवाद, का नारा है।
पैसे का जब हुआ प्रश्न तो,
स्वार्थवाद ही प्यारा है॥

सुप्रभात आयेगा !

साथी ! डरो न अंधकार से,
वह प्रकाश बन आयेगा।
मध्यनिशा का तम संपुट ही,
सुप्रभात को लायेगा॥

दमघोटू पावस का ऊमस,
सघन जलद बरसायेगा।
पतझड़ की नीरस संध्या मे,
नव वसन्त मुस्कायेगा॥

आगे बढ़ो !

पग-पग पर है विघ्न-जाल यहा,
तुम, आगे बढ़ना सीखो।
कभी न संकट के तूफाँ मे,
व्यथित-भीत बन कर चीखो॥

प्रगति पथ !

कल कल करती बहती सरिता,
प्रगतिपंथ का गाती गीत !
शत शत अवरोधो से टकरा,
पा लेती निज मार्ग पुनीत॥

दो फूल !

दो फूल खिले थे उपवन में ,
वे सग-सग मुस्काये है ।
इक शीस चढ़ा सम्राटो के ,
लाखो ने शीश झुकाये है ॥

इक फूल टगा डालो पर ही ,
मुरझा कर प्राण गवाये है ।
दो मार्ग यही है जीवन के ,
मैंने तुमको दिखलाये है ॥

पीने का तरीका !

जो जहर हलाहल है जग मे ,
वह अमृत भी हो सकता है ।
पीने की यदि कला ज्ञात हो ,
तो, गरल सुधा हो सकता है ।

मरना नहीं आया ?

इतिहास खोल कर देखो तुम ,
यह सत्य अटल वहा छाया है ।
जिसको जीना नही आया है ,
उसको मरना नही आया है ॥

दीपक से !

तमसावृत कृष्ण-निशा मे तुम ,
करते हो अविरल ज्योतिदान ।
निःस्वार्थ विश्वहित के रक्षक !
हे दीप ! तुम्हारा चरित महान ।।

जीवन निर्झर !

बहता निर्झर कलकल कर के ,
चट्टानो से टकराता है ।
प्रतिरोधो मे पथ निर्मित कर ,
आगे ही बढता जाता है ।
जीवन निर्झर को बहने दो ,
सकट के शिखरो से टकरा ।
रुक जाने का है नाम मृत्यु ,
बढ़ना जीवन का रूप खरा ।।

गति ही जीवन है

सासो की वोणा रुक-रुक कर ,
झंकार सुनाती जाती है ।
बढ़ते जाना , चलते जाना ,
गति ही जीवन कहलाती है ।

जीवन का अर्थ !

विघ्नो की छाती चीर—चीर,
तूफाँ से लड़ते चलना है।
सुस्ताने का है अर्थ 'मृत्यु',
जीवन का मतलब चलना है।

उत्तम खेती !

मन की स्निग्ध-मृदुल भूमि को,
करो ज्ञान-हल से कर्षण।
श्रद्धा के शुभ बीज डालकर,
तपोवृष्टि का कर वर्षण॥

सयम की शुभ फसल उगाओ,
समता, शुचिता के मृदु फल।
उत्तम खेती करके साधक,
नर जीवन को करो सफल॥

लघुता !

पत्थर पथ में पडा ठोकरे,
खाता निज भारीपन से।
रज कण चढकर नभ में, रवि पर
छा जाता है लघुपन से॥

मीठी वाणी !

रूप न सुन्दर, कुल नहि उत्तम,
नही विशेष गुण का दर्शन।
मीठी वाणी से बस, कोकिल,
करती जन-मन आकर्षण।

धर्म का सार !

सब धर्मों का सार यही है,
सब ग्रन्थो का यह नवनीत।
जहां स्नेह, सेवा, प्रियवाणी,
वहाँ रमा गाती है गीत।

कहाँ भटकता है ?

कहाँ भटकता है तू मानव।
केवल झूठी प्यास लिए।
क्षणभगुर भौतिक वैभव में,
अमर शान्ति की आश लिए॥

बढ़े चलो !

बढ़े चलो तुम अपने पथ पर,
सागर थल बन जायेगा।
हर आवर्त तुम्हारे पथ का।
विजयद्वार बन जायेगा।

शुद्ध-धर्म !

बाह्य-भाव मे धर्म नही है,
केवल है जड का व्यामोह।
आत्मोन्मुखता शुद्ध धर्म है,
छोडो भौतिकता का मोह॥

नीर-क्षीर विवेक !

ब्रह्मा क्रुद्ध हुए हर सकते,
राजहस का कमल विलास।
किन्तु, नही हर सकते वे भी,
नीर क्षीर का बुद्धि विकास॥

श्रोता के तीन रूप !

(१) कुछ श्रोता ऐसे होते है,
सुनते है उपदेश प्रखर।
किन्तु न उनके मन का पत्थर,
कही भीगता है तिलभर॥

(२) कुछ श्रोता गुरु सन्निधि मे,
रहते उपदेश रसाप्लावित।
जैसे दूर गये, कि सूखे,
वस्त्र तुल्य मन है अस्थित॥

(३) कुछ श्रोता गुरु वाणी रस पा,
रस मय कर लेते जीवन !
मिश्री सम मन उनका होता,
रस मे घुल जाता तत्क्षण !!

श्रोता और उपदेशक की दशा !

देखा मेने इधर बरसती,
उपदेशो की जलधारा।
इधर धृष्टता की बरसाती,
पहने वैठा जग सारा ॥

जाते सब उपदेश निरर्थक,
होता नही तिल मात्र असर।
गला फाड कर उपदेशक भी,
बैठे हैं अब शीस पकड़ ॥

दिमाग ठंडा रखिए !

प्रगतिशील जन नेता ! अपना—
ठंडा रखिए सदा दिमाग।
अपने उच्च विशद निश्चय के,
लिए हृदय मे रखिए आग ॥

पात्र-अपात्र !

ज्ञान प्राप्ति का अधिकारी वह ,
जो विनीत , श्रद्धालु है ।
सरल स्वभावी , सच्चरित ,
पुरुषार्थी और दयालु है ।

सात व्यक्ति नही पात्र ज्ञान के ,
दुराचार-रत , निद्रालु ।
क्रोधी और अहकारी नर ,
कुटिल , प्रमादी, ईर्ष्यालु ॥

व्यवहार के सूत्र !

संतो के प्रति श्रद्धा रखिए ,
और बडों के लिए विनय ।
मित्र जनो से सरल स्नेह अरु ,
दीनो के प्रति करुणामय ॥

भृत्य जनो के प्रति अपनापन ,
छोटो के प्रति वत्सलता ।
जीवन और जगत के प्रति तुम ,
रखो सरसता, निश्छलता ॥

सच्चा और अच्छा !

कहो वचन वह , जो हितकारी ,
और मधुर भी , हो सच्चा।
कार्य करो, जो निज-पर-सुख कर,
कहे सन्त जन भी अच्छा।

आग्रह और विग्रह !

तर्ककुशल , बौद्धिक हो तो तुम ,
रहो दूर नित आग्रह से।
धन, यौवन, दैहिक-बल है तो ,
बचो परस्पर विग्रह से॥

ससार !

कही बज रही है वीणा तो ,
कही हो रहा करुण-विलाप।
कही मधुर मिष्ठान्न-तृप्त जन ,
कही क्षुधातुर करे प्रलाप।

कही सन्त जन शान्त मुदित मन ,
कही क्रुद्ध-लोभी विकराल।
जान न पाये अमृतमय है ,
या विषमय है यह संसार ?

व्यसन और फैशन...

व्यसन और फैशन मे फंसकर ,
व्यथित हो रहा है ससार ।
सत्य , सादगी , सेवा से अब ,
उसको कुछ भी है नही प्यार ॥

याचक !

कहते हैं तृण अतिलघु होता ,
तृण से भी अति लघु कपास ।
किन्तु, दीन याचक उनसे लघु ,
ऐसा है जग का विश्वास ॥

तृण , कपास को पवन उडाता ,
क्यो न उडा लेता याचक को ।
भय है , करले कही न याचना ,
तब क्या देगा उसे पवन, जो ।

धर्म ही अविचल !

चचल लक्ष्मी , चचल यौवन ,
बल-वैभव-परिकर चचल ।
इस सम्पूर्ण चलाचल जग मे ,
एक धर्म ही है अविचल ॥

मुदित मुनि ।

भूमि शय्या, तकिया बाहु,
चादर निर्मल-गगन वितान :
चन्द्र दीप, अरु विरति-वधू सह,
रहते मुनि जन मुदित महान ॥

विजयचिन्ह ।

कोध रही है क्रूर बिजलियाँ,
और पवन चलता प्रतिकूल ।
अट्टहास करता है जलधर,
उफन रही नदियाँ भरपूर ।
मंजिल दूर बहुत है राही !
और अकेले हो पथ मे ।
बढते जाना मजिल तक तुम,
विजयचिन्ह रखते पथ मे ॥

मोती-सीप ।

सेवा, समता, सदाचार अरु,
सद्भावो के मजुल दीप ।
जोवन सागर में से चुन लो,
साथी सुन्दर मोती-सीप ॥

मन को गतिशील करो !

आशा के नव दीप जला कर,
जड़ता मुक्त करो मन को।
नव चिन्तन की नव ऊष्मा से,
अब गतिशील करो मन को॥

आत्मनिरीक्षण !

प्रातः उठकर सच्चे मन से,
आत्मनिरीक्षण करो प्रथम।
जो मन की दुर्बलताएँ है,
हिम्मत से उनको करो खतम।

फिर परखो निज अन्तर मन को,
कितनी जागृति, स्फूर्ति है।
आत्मनिरीक्षण से ही होगी,
खण्डितबल की पूर्ति है॥

खुद ही खेवनहार !

रक्षणहार स्वयं तुम अपने,
कौन किसी का प्यारा है।
अपनी जीवन नौका का तू,
खुद ही खेवनहारा है॥

कर्त्तव्य मार्ग !

हटो न निज कर्त्तव्य मार्ग से,
भले देव भी होवे क्रुद्ध।
देव पुनः प्रीतियुत होगे,
देख तुम्हे कर्त्तव्य-निबद्ध ॥

षड्गुण

सफल कार्यकर्त्ता मानव के,
अश्व तुल्य है ये षड्गुण।
ऋजुता, वेग, तितिक्षा, धीरज,
सद्विवेक, चलने की धुन ॥

चार तरह के श्रावक

(१) चार तरह के श्रावक होते,
महावीर ने बतलाये।
दर्पण के सम स्वच्छ हृदय जो,
प्रथम कोटि में है आये ॥

(२) देख पवन का रुख जो डोले,
निज विचार का मूल्य कहाँ ?
डगमगता विश्वास जिन्हो का,
उन्हे ध्वजा के तुल्य कहा ॥

(३) नही परखते सच्चाई को,
सच्चे खुद को मान रहे।
गलत बात पर अड़ते रहते,
उनको स्तम्भ समान कहे॥

(४) शुद्ध सदाचारी सन्तों का,
करते छिद्रान्वेषण जो।
सिर्फ नाम के है वे श्रावक,
तीक्ष्ण शूल जैसा मन हो॥

चार शासन !

चार तरह के शासन जग में,
नीतिकार का है भाषन।
धन का, बल का, तथा बुद्धि का,
और प्रेम का अनुशासन।

कलियुग-सतयुग !

आलस, तन्द्रा मे जो डूबे,
जीना उनका है कलियुग।
लक्ष्य बना कर चल पडते जो,
उनके लिए सदा सतयुग॥

विजयमंत्र !

लोभी को जीतो तुम धन से ,
और विनय से मानी को ।
क्रोधी नर को मधुर प्रेम से ,
श्रद्धाबल से ज्ञानी को ॥

व्यावहारिक चातुरता से तुम ,
जीतो मूर्ख जनो को सद्य ।
कृपण जनों को दान आदि से ,
विजयमत्र का है यह पद्य ।

चार वृत्तियाँ...

(१) मेरा सो तो मेरा है अरु ,
तेरा सो भी मेरा है ।
अधम मनुज की है यह वृत्ति ,
घट में जहां अँधेरा है ।

(२) मध्यम मानव को वृत्ति में ,
चलती रहती यही रटन ।
मेरा मेरा, तेरा तेरा ,
लोभ-नटी का नव-नर्तन !

(३) तेरा सो तेरा है लेकिन,
मेरा भी तेरा भाई!
मनोवृत्ति उत्तम मानव की,
शास्त्रो में है बतलाई।

(४) निर्मोही, निस्पृह मुनिजन को,
नहीं कुछ तेरा मेरा है।
क्षणभगुर इस भौतिक जग मे,
झूठा सभी झमेला है॥

तीन बातें!

शैल-शिखर सम अपने गुण को,
रज-कण तुल्य पराया दोष।
गुप्त रहस्य किसी का भी हो,
प्रकट न करिये, रखिये होश!

उन्नति के सूत्र!

मिलनसारिता, वचन मधुरता,
विनयशीलता, हृदय पवित्र।
बुद्धि - साहस और परिश्रम,
जीवन उन्नति के ये सूत्र॥

ज्ञान प्राप्ति के तीन साधन !

ज्ञान मनन से जो मिलता है -
सर्वोत्तम - कहलाता है।
अनुभव से जो मिलता है वह,
मध्यम श्रेणी - पाता है ॥
लोक अनुसरण से जो ज्ञप्ति-
मिलती है वह निम्न विधान।
ज्ञान प्राप्ति के साधन जग मे,
तीन कोटि के है पहचान ॥

आत्म ज्योति !

आत्म ज्ञान जब तक नही होता,
तब तक अन्य ज्ञान नि.सार।
आत्म-ज्योति के जगने पर ही,
हो सकता नर तम से पार ॥

मनुज में ईश्वर !

बीज, सिर्फ यह बीज नही है,
वट का रूप छिपा इस मे !
मनुज, सिर्फ यह मनुज नही है,
ईश्वर का उद्भव इस मे !

प्रेम पंथ !

प्रेम-पथ है इतना विस्तृत
इस मे सकल समा सकते ।
और संकुचित इतना भी कि
तू—मै दो नही आ सकते ।

यति-नृपति !

यति ओ नृपति दोनो का ही
धर्म एक, समता-दर्शन
एक भाव से देखे जग को
करे सभी का हित साधन ।

मर्द !

मर्द वही, जो अपने मुख से,
कहता है, सो करता है ।
कहे वचन को पूरा करने,
हंसते-हंसते मरता है ॥

वचन स्वप्न मे दिया हुआ भी,
मर्द निभाते आये है ।
प्राणों से भी प्रण का ज्यादा,
मूल्य समझते आये हैं ॥

पीतल निकले !

जिनको त्यागी समझा था वे,
भोगी परम रसिक निकले।
पाटल-पुष्प समझते जिनको,
गंध-हीन-किंशुक निकले।

स्वर्ण झोल चमचमता जिन पर,
वे निकले कोरे पीतल।
दुर्वासा से अग्निपुंज, कि,
समझा था जिनको शीतल।

मैत्री !

मिला दूध से जल, तो उसने,
किया उसे भी आप समान।
जलता देख दूध को, जल ने
किया अग्नि में निज बलिदान !
मित्र विपद् को देख दूध भी,
हुआ उबलने को तैयार !
जल पाकर के शान्त हुआ फिर,
सन्मैत्री का यही प्रकार !!

तीन कोटियां !

सज्जन जन निज स्वार्थ त्यागकर,
करते है निज पर उपकार।
स्वार्थ सुरक्षित रखकर परहित ,
करते जन सामान्य प्रकार।

वे नर तो राक्षस हो, हनते–
स्वार्थ हेतु जो पर हित, मित्र !
किन्तु निरर्थक पर हित नाशे ,
उन्हे कहे क्या ? अहो विचित्र !

शील महिमा !

पावक, जल सम शीतल होती ,
होता सिन्धु, नदी तत्काल।
मेरु, रज कण सम बन जाता ,
मृग सम होता , सिंह कराल।
व्याल, पुष्प माला बन जाती ,
विष होता पीयूष समान !
जिस मे अखिल लोक सुखकारी ,
समुदित होता शील महान् ॥

प्रमाद शत्रु !

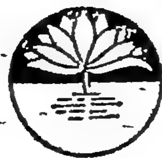
निश्चय ही मानव जीवन का,
सबसे बढकर शत्रु प्रमाद।
नही मित्र उद्यम सम कोई,
जिस से होता नष्ट विषाद !

शिव और शव !

जिसके भीतर शक्ति, स्फूर्ति है,
है 'शिव' रूप वही जीवन !
साहसहीन, निराशामय मन,
है केवल 'शव' का लक्षण !

मन का लंगड़ा !

देव सहायक होते उसके,
जिसके मन मे है उत्साह !
मन के लगडे को तो हरि भी,
नही उठा सकते, धर बाँह !




युग
अनुबन्धन

भारत की आत्मा !

उज्ज्वल उच्चादर्शों के प्रति ,
निष्ठा नही रही मन में ।
खण्डित भारत की आत्मा को ,
देखो युग अनुबन्धन में ॥

भारत गौरव !

क्या था भारत का गुण गौरव ,
क्या थी उज्ज्वल अविकल शान !
विश्व क्षितिज पर दूर-दूर तक ,
तना हुआ था यशोवितान ॥

'गुरु' के पद से सम्मानित था ,
झुकता मस्तक सब जग का ।
इसकी भास्वर ज्ञान रश्मिया ॥
अन्धकार हरती जग का ,

वर्तमान भारत !

जहाँ मुरारी गाय चराते ,
मुरली मधुर बजाते थे ।
गोकुल में ग्वालन के सग मे ,
दही मखनियां खाते थे ॥

उस धरती पर हाय ! गाय अब ,
निर्दयता से कटती है ।
गौ माता के चर्म-मास से ,
पावन-भूमि पटती है ॥

श्वान-बिल्ली-पाल !

आज भारतवर्ष मे कम,
हो रहे 'गोपाल' है।
दे रहे घर-घर दिखाई,
श्वान–बिल्ली–पाल है ।

बात है 'गौभक्ति' की, पर,
भक्त है गो-चर्म के।
पालते शूकर व कुक्कुट,
कार्य करने धर्म के ॥

कलियुग का दृश्य !

है सन्त आज सन्तप्तमना,
विद्वान ग्रस्त मत्सरता से ।
नेता सत्ता के भूखे है,
धार्मिक जकड़े कट्टरता से ।

त्यागी आडम्बर के रसिये,
दानी बस, नाम किया चाहते।
जन सेवक, सेवा का मेवा,
चुपचाप अकेले ही खाते।

फूट पिशाचिनी !

एकता सद्भाव का,
अभाव होता जा रहा है।
फूट ओ विद्वेष-विग्रह,
भाव बढ़ता जा रहा है।

दीप बुझता प्रेम का,
और द्वेष ज्वाला जल रही है।
फूट की यह राक्षसी,
जन-शान्ति सौख्य निगल रही है।

एटम का बेताल !

हुआ एटम का आविष्कार।
हाथ में लगा शक्ति भण्डार।
खुले थे अगणित प्रगति द्वार।
कि कितना हर्षित था संसार ॥

मगर जब हुआ प्रथम सहार।
कि थर् थर् काप उठा संसार।
प्रलय सर्जा निज हाथो से।
हाय अब कौन करेगा त्राण ?

बनी सोने चांदी की भस्म,
गई मेधा जग की बेकार।
मनुज-निर्मित एटमबेताल,
लगा करने उसका सहार ॥

रिश्वतदेवी !

कलियुग की इक महादेवी है,
सभ्य नाम जिसका रिश्वत।
बाजार-कचहरी थानो मे,
हर वर्ग उसी से आतकित ॥

कौरव-पाण्डव !

है सम्प्रदाय का कुरुक्षेत्र
गुरुडम का करके शखारव।
लड़ रहे परस्पर जैन आज,
बनकर युग के कौरव-पाण्डव,

मशीनों का अजगर !

अजगर यत्र मशीनो का यह,
मानव-श्रम को निगल रहा,
पराधीनता, बेकारी का,
जहर हलाहल उगल रहा ।

सद्भाव नहीं तो ?

मन्दिर–मस्जिद–गिर्जा–स्थानक ,
गुरुद्वारो का अनुभव मेरा ।
जो त्याग और सद्भाव नही ,
तो , मिट्टी पत्थर का है ढेरा ॥

विश्वास !

राष्ट्र-राष्ट्र है आज सशकित ,
आतकित भयग्रस्त सभी ।
अविश्वास परस्पर में है ,
शान्ति मिलेगी नही , कभी ॥
मार्ग शान्ति का एक यही है ,
बढे परस्पर में विश्वास ।
मुक्त-प्रेम का द्वार खुले ,
सद्भाव ज्योति का ज़गे प्रकाश ॥

दल-बदल ?

राजनीति का रंग रूप अब,
हुआ है संध्या का बादल !
दिल-बदलो का पता न चलता,
करते रहते दल-बदल !

लड़कों की बोली !

उज्ज्वल सस्कृति पर यह कैसी,
कालिख पोती जाती है ?
आज बोलियां लडको की,
सडको पर बोली जाती है ॥

प्राचीन मंत्री !

सत्य, सादगी और सरलता,
जीवन सहज बिताते थे।
मत्री, मित्र तथा विद्यागुरु,
तीनो विरुद निभाते थे ॥

आज के मंत्री !

ऊँचा रहन-सहन, ओ बंगले,
कार, मिली सब ही सुविधा।
जनसेवक वन, रौब गाठते,
मंत्री, आज बने दुविधा ॥

गरीबो की पुकार !

श्रीमतो के संकेतो पर,
नाच रहा है यह ससार।
कौन गरीबो की सुनता है,
पीड़ा, करुणा भरी पुकार ॥

सूनी बस्ती के बनियां !

दौड रही है धन के पीछे,
अन्धी बनकर यह दुनिया।
समय बे-समय नही देखती,
(ज्यो) सूनो बस्ती का बनिया ॥

मतलबी जग...

जग मतलब का साथी केवल,
मतलब भी बस, अपना है।
मतलब जब सध गया किसी का,
प्रेम तुम्हारा सपना है।

कौन सुनता है ?

सुनता है कौन पुकार यहाँ,
दुखियारे दीन गरीबो की।
तस्वीर कौन देखे यहाँ पर,
इन फूटे हुए नसीबो की।

संसार पूछता है धन को,
माया से माया मिलती है।
लक्ष्मी की आहट से निद्रा,
नारायण की भी खुलती है।।

प्लास्टिक के फूल !

बातों के, वादो के सपने,
प्लास्टिक के फूल मनोहर है।
देखो तो, सुन्दर सुषमा है,
सूँघो तो गन्ध नही दर है !
जीवन मे कृत्रिमता रखना,
फैशन का रूप बना हैं अब !
स्वाभाविक-सहज-सरल-जीवन,
जीना अपराध बना है अब !

स्वार्थवाद !

स्वार्थ जिसका धर्म है—
और स्वार्थ जिसका कर्म है !
उसके लिए तो विहित-अविहित,
की न कुछ भी शर्म है।।

लोकनिन्दा और पर-भव,
भीति उसको कुछ नही!
स्वार्थ सधना चाहिए,
इन्सानियत कुछ भी नही!!

रखवाली जूते धोती की!

एक समय भारत मे रहती,
खुली दुकाने मोती की!
आज लगे ताले, होती–
रखवाली जूते धोती!!

नई सभ्यता!

सभ्यता का नूतन परिवेश,
यही क्या देता है सन्देश!
हृदय में कृत्रिमता का क्लेश,
और होठो हर हास-विशेष!

बनाता जीवन के दो रूप,
एक है सुन्दर, एक कुरूप!
हुआ खण्डित-सा यह व्यक्तित्व,
हैं पलते साथ विरोधीतत्व!

है मन के भीतर गहरे घाव,
मगर मुख पर, मुस्काते भाव!
यह क्या नई सभ्यता आज,
मनुज करता अपने से व्याज?

खेतों की ओर!

देखो, प्राची के पथ पर यह,
रवि का स्वर्णिम रथ दौड रहा!
जागृत करता जग का कण-कण,
अलि-गण की कुण्ठा तोड रहा!
जागृति का, गति का, उन्नति का,
सन्देश सुनाता है प्रतिदिन!
मजिल की ओर बढो साथी,
चरणो के साथ बढाते चरण!
नभ मे घनघोर घटा उमडी,
हर्षित हो नाच उठे, वनमोर!
हल बैलों की जोडी लेकर,
चल पड़े कृपक खेतों की ओर!




पूजा के दीप

पथ के दीप !

घनीभूत-तम , बीहड पथ है ,
मजिल भी है नही समीप ।
सुस्थिर, निर्भय यात्रा के तब ,
साथी होंगे पथ के दीप !!

दीप !

ऐसा दीप जलाओ साथी ,
कभी न बुझने जो पाए ।
बाहर-भीतर आलोकित कर ,
शुभ्र—रश्मियां सरसाए ॥

कविता की राधा !

आस्था का सुन्दर मोती यह ,
जिसकी मजुल-उज्ज्वल आभा ।
धारण कर झूम उठेगी अब ,
मेरी कविता की नव राधा ॥

मन की गति !

मन की गति ज्यो प्रबल प्रभंजन ,
और शक्ति है अमित अपार ।
स्वर्ग-नरक ओ पुण्य-पाप का ,
क्षण भर मे रचता ससार ॥

उषा-निशा !

कांप रहे किस आशका से ,
नीलगगन मे अगणित तारे ।
सुबह उषा के स्वर्णाचल मे ,
छुप जायेंगे ये वेचारे ।

तो क्या होगा ? फिर निशि होगी,
और छटा छिलरायेगी ।
अगर उषा आती हैं ? तो फिर ,
पुनः निशा भी आयेगी ।

नशा !

कर-कर नशा, दशा निज तन की
विकृत हाय ! बनाई है ।
भंग, तमाखू, मद्य-पान में ,
गली सकल तरुणाई है ॥

सुख के फूल !

दुख के नुकीले कंटको मे ,
महकते सुख फूल हैं ।
दुख के बिना सुख चाहना ,
केवल हृदय की भूल है ॥

सूखा सोता !

सुख-सुविधा का ढेर लगा,
पर, शन्ति, शान्ति मन रोता है।
बाहर में सागर लहराता-
अन्तर में सूखा सोता है।

कंटक पथ !

सभी चाहते इस धरती से,
दानवता अब मिट जाए।
मानवता की सुन्दर-सुषमा,
द्वार-द्वार पर खिल जाए।

किन्तु समय पर मानवता का,
गौरव रखते है कितने ?
बलिदानो का कंटक-पथ,
अवसर पर चुनते है कितने ?

बिना विचारे !

आंख मूंद कर चलने वाला,
ठोकर खाकर है गिरता।
बिना विचारे करने वाला,
दुःख गर्त मे ही रहता॥

मायाचारों का मैल !

उज्ज्वल-शुभ्र-धर्म के तन पर,
छाया मल मायाचारो का।
पलता जाता कीट उसी में,
स्वार्थों, ओ अत्याचारो का ॥

सुख-दुख !

सुख-दु.ख ओ उत्थान-पतन तो,
क्रमशः आते रहते है।
महाकाल की अटल धुरी पर,
नर्तन करते रहते है ॥

निर्विचार जीवन !

नही स्नेह की मधुर मधुरिमा
सदसद् का नही जरा विचार।
वह जीवन क्या जीवन है ?
जो नीरस है और निर्विचार ॥

मूर्ख का हठ !

भले प्राप्त करले मिट्टी से,
तैल भ ही कोई धीर !
और तृषा से व्याकुल कोई,
पीले मृगतृष्णा से नीर !

और ढूढते हुए कदाचित ,
मिल जाये गदहे के श्रृंग !
किन्तु असम्भव करना जग मे ,
मूर्ख हृदय के हठ को भग !

चंचल लहर !

सागर की हर लहर लिए है ,
अपने साथ नई हलचल !
किन्तु मूल्य क्या है उसका ,
जो इतनी वेगवती चचल !

जब और तब !

जब व्याकुल थे प्राण सूखते ,
नही नीर था पास तभी।
आज लबालब भरा सरोवर ,
किन्तु नही है प्यास अभी !

अज्ञ नर !

जब तक था अल्पज्ञ, हस्ति-सम
मद से अध हुआ नादान।
और समझ सर्वज्ञ स्वय को
करता था अतिशय अभिमान !

पर, विद्वानो की सगति से
हुआ हृदय मे जब कुछ ज्ञान ।
ज्वर सम उतर गया मद सहसा,
हुआ मूर्खता का भी भान !

मूर्ख का संग !

चाहे घोर वनो में साथी !
करो वनचरो के सह वास ।
किंतु, स्वर्ग मे भी मूर्खों के
संग न करना कभी निवास ॥

मूर्ख को औषधि !

सकल रोग की औषधि जग मे
मत्र, तन्त्र और यत्र अनेक ।
आविष्कृत भी हुई अभी तक
नही मूर्ख की औषधि एक ॥

अर्थ-उष्मा !

भरी-अर्थ-ऊष्मा जब तक है,
तब तक तेज, तभी तक बल !
अर्थ-शान्त, सज्जन भी शव-सम
देखो जग का अद्भुत छल !

दुर्जन त्याग !

विद्या, धन, सत्ता से युत भी
दुर्जन का तो करिए त्याग ।
मणि से भूषित होने पर भी
क्या न भयकर होता नाग ?

दयापात्र !

हसो न सभ्यो ! दीन-हीन पर
वे असहाय दया के पात्र !
बदकिस्मत की कथा सुनाता
उनका कृश, जर्जर-सा गात्र ॥

गेंद और ढेला !

ठोकर खाकर गिरा हुआ भी
गेंद पुनः उठ जाता है ?
हे चैतन्य मनुज ! ठोकर खा
क्यो हताश हो जाता है ।

गिर कर जो उठना नही जानें
वह मिट्टी का ढेला है ।
गिर-गिर के, उठ चलना अविरल
यह साहस का खेला है ॥

दोष किसका ?

अगर सूर्य किरणो से ताडित
होता है खल्वाट कही ।
देती शशि की शीतल ज्योत्स्ना,
तस्कर को सताप कही ।
अगर मधुर भोजन भी कडुवा
ज्वर-ग्रस्त को लगता है ।
विश्वहितैषी मुनि-दर्शन से
द्वेष किसी को जगता है ।
तो इस मे क्या दोष वस्तु का ,
दोष व्यक्ति के भीतर है ।
अगर हुआ परिमार्जन मनका
सभी वस्तुए सुखकर है ।

विचित्र संसार !

कही रंगीले फूल खिले हैं,
बिखरे आशा के मोती ।
कही निराशा की झाडी में,
व्याकुल आशा है रोती ॥

बलिदानों की धरती !

स्वामी की रक्षा के खातिर,
पन्ना ने सुत बलिदान किया।
निज देश. धर्म की रक्षा हित,
भामा ने सब कुछ दान किया ॥

बलिदानो की यह धरती है,
वीरो के शोणित से रजित।
साहस-सेवा उत्सर्गों की,
गाथा कण-कण मे है सचित।

दो दृश्य !

दुनिया नाम इसी का है,
दो दृश्य यहां पर मिलते है।
कॉटे झोंपड़ियों मे चुभते,
ओ, सुमन महल मे खिलते हैं।

एक ओर मधुर मिष्ठानो की,
जूठन डाली जाती है।
एक ओर उस जूठन पर,
भूखी आंखें ललचाती हैं।

माँसाहार !

मांसाहार न भोजन नर का,
वृत्ति निशाचर की यह क्रूर !
उदर पवित्र, बनाया मरघट,
हाय ! विवेक गया है दूर !!

काल का तूफान !

एक से ही एक बढ़कर,
हो गए कई इन्सान है।
पर, काल के तूफान मे,
सब मिट चुके निशान है।।

गालीदान !

जितनी चाहें गाली देवें,
क्योंकि आप हैं गालीदान !
नही हमारे पास, अत: हम,
कर न सकेंगे गालीदान !

जो है जिसके पास वही,
दे सकता है, यह विदित प्रसग।
दे सकता है नही किसी को,
कोई भी खरहे के शृंग।।

मौन !

किया अज्ञता को ढकने का,
विधि ने सुलभ उपाय प्रदान।
विज्ञजनो के बीच मूर्ख का,
आभूषण है मौन महान्।

पात्र-अपात्र !

मन को मृदुल बनाने वाला,
ज्ञान अगर मद का कारण!
अमर बनाने वाला अमृत,
बनता मृत्यु का कारण।
तो समझो यह सूर्य तेज,
कौशिक-शिशु हित है अन्धकार।
यह दोष वस्तु का नही, किन्तु,
है सिर्फ पात्र का दुर्विकार॥

किस्मत का खेल !

किस्मत का खेल निराला है,
कोई हसता है, कोई रोता है।
क्षण में कोई लाखो पाता है,
क्षण मे कोई लाखो खोता है॥

कोयल का बोल !

अहा ! प्रकृति की छटा निराली ,
बहती मस्त हवा मतवाली ।
डालो—डालो कोयल बोले ,
पीकर ज्यो हाला की प्याली ।

रूप और कुल, प्रकृति के वश ,
उस पर क्या रोना, पछताना ।
मीठी मधु-सी बोली बोलो ,
हो जाएगा विश्व दिवाना ।।

विपरीत !

'सरस' अगर विपरीत हुआ तो ,
'सरस' रूप ही रहता है ।
पर, विपरीत दशा मे 'साक्षर' ,
'राक्षस' की गति गहता है ।

अष्ट सकार !

'सत्य' 'सदाशयता' ओ 'सत्ता'
'सपत्ती', 'सुकृति'—सगम ।
मन 'संतोष', 'सरस्वती' 'सेवा' ;
अष्ट सकार सदा दुर्लभ !!

चाँदनी रात !

सुनहली संध्या के पश्चात्,
ठिठकती रजनी यो आई।
स्वर्ण की मञ्जुल आभा पर,
वार-वनिता ज्यो ललचाई ॥

गगन मे चंदा मुस्काया,
रूपहली ज्योत्स्ना छितराई।
धरा-दुलहिन पाकर प्रिय को,
लगी भरने नव-अगडाई ॥

मौन निमन्त्रण !

चाँद सितारे नभ-प्रांगण में,
पुलक-पुलक रस-राच रहे।
फलित-पादपो की डाली पर,
लचक-लचक खग नाच रहे,

सागर के वक्षस्थल पर यह,
मादक-लहरो का अभिनर्तन !
किस ! अप्रत्याशित-अतिथि के,
आने का है मौन निमन्त्रण।

आश का तार !

सांस की हर धड़कन के बीच ,
आश का जुडा हुआ है तार।
आश ही करती श्लथ-मन मे ,
सदा नवजीवन का सचार।

बूंद-बूंद से सागर !

कितने ही लघु जल कण मिलकर ,
एक बूंद बन पाती है !
बूद–बूद से सरिता, सरिताए ,
सागर बन जाती हैं !

मन की वेदना !

गीत मन की वेदना के ,
क्यो मुखर होते अधर पर ?
द्वन्द्व मन का छंट सके, कुछ ,
फूट पड़ते इसलिए स्वर !

रहट की कथा !

अट् अट् करता रहट इधर है ,
ऊपर से नीचे को जाए।
थोड़ा-सा जल लेकर आया ,
तन कर ऊँचा शीश उठाए।

खाली होते हो झुक जाता,
किसी तुच्छ मानव के जैसे !
थोडा-सा जल पा बन जाता,
यथा भिखारी पाकर पैसे ॥

स्वात्म-प्रशंसा !

पर्वत सदृश महापुरुष भी,
तब होते रज कण से हीन।
जब कि होते अपने मुख से,
अपना गुण कहने मे लीन ॥

जरा !

जरा ! तुम्हे हो नमस्कार,
तुम हो कृतान्त की प्रिय दूती।
झुक गई तुम्हारे स्वागत मे,
अल्हड यौवन की उद्भूति ?

बुढ़ापा !

अस्फुट वाणी, स्खलित गति और,
मुख यह दन्त-विहीन हुआ।
हाय बुढापा ! बचपन का यह,
प्रकट पुन. क्या सीम हुआ।

बुढ़ापे का चित्र !

भोगेच्छा सब क्षीण हो गई,
नष्ट हुआ मित्रो मे मान।
समवयस्क सब साथी अपने,
पर भव को कर चुके प्रयाण।
हम भी लकडी लेकर चलते -
मन्द हुई आँखों की ज्योत।
अहो धृष्ट, यह काया फिर भी,
चौंक रही आती लख मौत।

सार्थकता !

धन तो वह जो रहे गांठ मे,
मित्र वही, जो आये काम।
है विज्ञान वही सार्थक जो,
मानवता का हो सुखधाम।
